UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186571
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—557—13-7-71—3,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H181·4 Y31K   Accession No. H1645

Author वर्मा, रामकुमार

Title कबीर का रहस्यवाद · 1961.

This book should be returned on or before the date last marked below.

कबीर का रहस्यवाद

[कबीर के दार्शनिक विचारों का गंभीर विवेचन]

डा० रामकुमार वर्मा

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

नवीं आवृत्ति : सन् १९६१ ईसवी

चार रुपये

मुद्रक : द्वारका नाथ भार्गव,
भार्गव प्रेस, १ बाई-का-बाग, इलाहाबाद-३

श्रीमान् डाक्टर ताराचन्द
एम्० ए०, डी० फिल्० (आक्सन)
की सेवा में सादर
सर्मपित

—रामकुमार

चौथे संस्करण की भूमिका

मुझे प्रसन्नता है कि इस पुस्तक ने कबीर की कविता और उसके दृष्टिकोण के सम्बंध में बहुत सी भ्रांतियाँ दूर की हैं। अब यह पुस्तक नये संस्करण में विद्वानों की सेवा में जा रही है।

हिन्दी विभाग
२४-१०-४१

रामकुमार वर्मा

रहस्यवाद आत्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है
जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत
और निश्छल सम्बंध जोड़ना चाहता है और यह
सम्बंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों
में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।

विषय-सूची

परिचय	...	...	१
रहस्यवाद	...	...	६
आध्यात्मिक विवाह	...	...	४७
आनंद	...	...	५३
गुरु	...	...	६०
हठयोग	...	...	६८
सूफ़ीमत और कबीर	...	...	९१
अनंत संयोग (अवशेष)	...	...	१००
परिशिष्ट			
(क) रहस्यवाद से सम्बंध रखने वाले कबीर के कुछ चुने हुए पद	...	...	१०४
(ख) कबीर का जीवन वृत्त	...	...	१६६
(ग) हठयोग और सूफ़ीमत में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्दों के अर्थ	...	...	१८६
(घ) हंसकूप	...	...	२०१

कबीर का रहस्यवाद

कहत कबीर यहु अकथ कथा है,
कहता कही न जाई ।
—कबीर

कबीर के समालोचकों ने अभी तक कबीर के शब्दों को तानपूरे पर गाने की चीज ही समझ रक्खा है पर यदि वास्तव में देखा जाय तो कबीर का विश्लेषण बहुत कठिन है। वह इतना गूढ़ और गंभीर है कि उसकी शक्ति का परिचय पाना एक प्रश्न हो जाता है। साधारण समझने वालों की बुद्धि के लिए वह उतना ही अग्राह्य है जितना कि शिशुओं के लिए मांसाहार। ऐसी स्वतंत्र प्रवृत्ति वाला कलाकार किसी साहित्य-क्षेत्र मे नही पाया गया। वह किन-किन स्थलों मे विहार करता है, कहा-कहा सोचने के लिये जाता है, किस प्रशान्त वन-भूमि के वातावरण मे गाता है, ये सब स्वतंत्रता के साधन उसी को ज्ञात थे, किसी अन्य को नहीं। उसकी शैली भी इतना अपनापन लिए हुए है कि कोई उसकी नकल भी नहीं कर सकता। अपना विचित्र शब्द-जाल, अपना स्वतंत्र भावोन्माद, अपना निर्भय आलाप, अपने भाव-पूर्ण पर बेढंगे चित्र, ये सभी उसके व्यक्तित्व से ओत-प्रोत थे। कला के क्षेत्र का सब कुछ उसी का था। छोटी से छोटी वस्तु अपनी लेखनी से उठाना, छोटी से छोटी विचारावली पर मनन करना उसकी कला का आवश्यक अंग था। किसी अन्य कलाकार अथवा चित्रकार पर आश्रित होकर उसने अपने भावों का प्रकाशन नहीं किया। वह पूर्ण सत्यवादी था; वह स्वाधीन चित्रकार था। अपने ही हाथों से तूलिका साफ़ करना, अपने ही हाथों चित्रपट की धूल झाड़ना, अपने ही हाथों से रंग तैयार करना—जैसे उसने अपने कार्य के लिए किसी दूसरे की आवश्यकता समझी ही नहीं। इसीलिए तो उसकी कविता इतना अपना-पन लिए हुए है !

कबीर अपनी आत्मा का सबसे आज्ञाकारी सेवक था। उसकी आत्मा से जो ध्वनि निकली उसका निर्वाह उसने बहुत खूबी के साथ किया। उसे यह चिन्ता नहीं थी कि लोग क्या कहेंगे, उसे यह भी डर नही था कि जिस समाज में मैं रह रहा हूँ उस पर इतना कटुतर वाक्य-प्रहार क्यों करूँ ? उसकी आत्मा से जो ध्वनि निकली उसी पर उसने मनन किया, उसी का प्रचार किया और उसी को उसने लोगों के सामने जोर-दार शब्दों में रक्खा। न उसने कभी अपने को धोखा दिया और न कभी समाज के कारण अपने विचारों में कुछ परिवर्तन ही किया। यद्यपि वह अपढ़ रहस्यवादी था, उसने 'मसि-कागद' छुआ भी नहीं था, तथापि उसके विचारों की समानता रखने वाले कितने कवि हुए हैं ? जहाँ कही भी हम उसे पाते हैं वहाँ वह अपने पैरों पर खड़ा है, किसी का लेश मात्र भी सहारा नहीं है।

काव्य के अनुसार जितने बिभाग हो सकते है उतने विभाग के सामने रखिए, किसी विभाग में भी कबीर नहीं आ सकते। बात यह नहीं है कि कबीर में उन विभागों में आने की क्षमता ही नहीं है पर बात यह है कि उसने उनमें आना स्वीकार ही नहीं किया! उसने साहित्य के लिए नहीं गाया; किसी कवि की हैसियत से नहीं लिखा, चित्रकार की हैसियत से चित्र नहीं खींचे। जो कुछ भी उस रहस्यवादी के हृदय से निकला वह इस विचार से कि अनंत शक्ति एक सत्पुरुष का संदेश लोगों को किस प्रकार दिया जाय, उस सत्पुरुष का व्यक्तित्व किस प्रकार प्रकट किया जाय, ईश्वर की प्राप्ति के लिये किस प्रकार लोगों से भेद-भाव हटाया जाय, "एक बिन्दु से विश्व रचो है को बाम्हन को सूद्रा" का प्रतिपादन किस प्रकार किया जाय, सत्य की मीमांसा का क्या रूप हो सकता है, माया किस प्रकार सारहीन चित्रित की जा सकती है, यही उसका विचार था जिस पर उसने अपने विश्वास की मजबूत दीवाल उठाई थी।

कबीर की प्रतिभा का परिचय न पा सकने का एक कारण और है। वह यह कि लोग उसे अभी तक समझ ही नहीं सके हैं। 'रमैनी' और

'शब्दों' में उसने ईश्वर और माया की जो मीमांसा की है, वह साधारण लोगों की बुद्धि के बाहर की बात है।

दुलहनी गावहु मङ्गलचार,
हम घरि आए हो राजा राम भतार।
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पञ्चतत बराती,
रामदेव मोरे पाहुँने आए, मैं जोबन में माती,
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार
राम देव सँगि भाँवर लेहूँ, धनि धनि भाग हमार,
सुर तेतीसूँ कौतिक आए, मुनिवर सहस अठासी;
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी ॥[१]

साधारण पाठक इस रहस्यमयी मीमासा को सुलझाने में सर्वथा असफल हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि जो 'उल्टवाँसियाँ' कबीर ने लिखी हैं उनकी कुंजियाँ प्रायः ऐसे साधु और महंतों के पास है जो किसी को बतलाना नहीं चाहते, अथवा ऐसे साधु और महंत अब हैं ही नहीं।

निम्नलिखित उल्टवाँसी का अर्थ अनुमान से अवश्य लगाया जा सकता है, पर कबीर का अभिप्राय क्या था, यह कहना कठिन है :—

अवधू वो तत्तु रावल राता।
नाचे बाजत बाजु बराता ॥
मौर के मांथे दुलहा दीन्हा।
अकथ जोरि कहाता।
मंड़ये के चारन समधी दीन्हा
पुत्र ब्याहिल माता ॥
दुलहिन लीपि चौक बैठारी,
निर्भय पद परकासा।

---

[१] कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा), पृष्ठ ८७।

भते उलटि बरातिंहि खायो,
भली बनी कुशलाता।
पाणिग्रहण भयो भौ मंडन,
सुषमनि सुरति समानी।
कहंहि कबीर सुनो हो संतो
बूझो पण्डित ज्ञानी ॥[१]

राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए० ने अपने कबीर शीर्षक लेख इसे योग की परिस्थितियों का चित्रण माना है।[२]

एक बात और है। कबीर ने आत्मा का वर्णन किया, शरीर का नहीं। वे हृदय की सूक्ष्म भावनाओं की तह तक पहुच गये है। 'नख-शिख' अथवा शरीर-सौंदर्य के झमेले मे नही पड़े। यदि शरीर अथवा 'नख-शिख' वर्णन होता तो उसका निरूपण सहज ही मे हो सकता था। ऐसा सिर है, ऐसी आँखे है, ऐसे कपोल है, अथवा कमल-नेत्र है, कलभ-कर बाहु है, वृषभ-कंध है। किन्तु आत्मा का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। उस तक पहुच पाना बड़े बड़े योगियो की शक्ति के बाहर है। ऐसी स्थिति में कबीर ने एक रहस्यवादी बन कर जिन जिन परिस्थितियों में आत्मा का वर्णन किया है वे कितने लोगो की समझ में आ सकती है? शरीर का स्पर्श तो इन्द्रियो द्वारा किया जा सकता है पर आत्मा का निरूपण करना बहुत कठिन है। आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा ही आत्मा का कुछ कुछ परिचय पाया जा सकता है। आध्यात्मिक शक्तियाँ सभी मनुष्यो मे नही रह सकती। इसीलिए सब लोग कबीर की कविता की थाह सफल रूप से कभी न ले सकेंगे।

आत्मा का निरूपण करना कबीर के लिये कहाँ तक सफलता का द्वार खोल सका, यह एक दूसरा प्रश्न है। कबीर का सारभूत विचार

१ बीजक मूल (श्रीवेंकटेश्वर प्रेस) सं० १६६९, पृष्ठ ७४-७५

२ कबीर—रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए०, पृष्ठ २४
[कलकत्ता यूनीवर्सिटी प्रेस, १९२८]

यही था कि वे किस प्रकार मनुष्य की आत्मा को प्रकाश मे ला दें। यह बात सत्य है कि कभी कभी उस आत्मा का चित्र धुँधला उतरता है, कभी हम उसे पहिचान ही नही सकते। किसी स्थान पर वह काले धब्बे का रूप रखता है। किसी स्थान पर उस चित्र का ऐसा बेढंगा रूप हो जाता है कि कलाकार की इस परिस्थिति पर हँसने को जी चौहता है, पर अन्य स्थानो पर वह चित्र भी कैसा होता है! प्रातःकालीन सूर्य की सुनहली किरणों की भांति चमकता हुआ, उषा के रंगीन उड़ते हुए बादलो की भाति झिलमिलाता हुआ, किसी अन्धकारमयी काली गुफा में किरणों की ज्योति की भाँति। इन विभिन्नताओं को सामने रखते हुए, और कबीर की प्रतिभा का वास्तविक परिचय पाने की पूर्ण क्षमता न होते हुए हम एक अन्धे के समान ढूँढ़ते हैं कि साहित्य में कबीर का कौन सा स्थान है!

इसमें सन्देह है कि कबीर की कल्पना के सारे चित्रो को समझने की शक्ति किसी में आ सकेगी अथवा नही। जो हो, कबीर की बानी पढ़ जाने के बाद यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि कबीर के पास कुछ ऐसे चित्रों का कोष है जिसमें हृदय में उथल-पुथल मचा देने की बड़ी भारी शक्ति है। हृदय आश्चर्य-चकित होकर कबीर की बातों को सोचता रह ही जाता है, वह हतबुद्धि होकर अशान्त हो जाता है। उस समय कबीर की प्रतिभा एक अगम्य विशाल वन की भाँति प्रतीत होती है और पाठको का मस्तिष्क एक भोले और अशक्त बालक की भाँति।

अन्त में यही कहना शेष है कि कबीर ने दार्शनिक लोगों के लिए अपनी कविता नहीं लिखी। उन्होंने कविता लिखी है धार्मिक विचारों से पूर्ण जिज्ञासुओ के लिए। समय बतला देगा कि कबीर की कविता न तो नीरस ज्ञान है और न केवल साधुओं के तानपूरे की चीज़। समालोचकगण कबीर की रचना को सामने रखकर उसके काव्य-रत्नाकर से थोड़े से रत्न पाने का प्रयत्न करे; चाहे वे जगमगाते हुए जीवन के सिद्धान्त-रत्न हों या आध्यात्मिक जीवन के झिलमिलाते हुए रत्न-कण।

रहस्यवाद

अब हमें कबीर के रहस्यवाद पर विचार करना है। कबीर की 'बानी' को आद्योपान्त पढ़ जाने पर ज्ञात हो जाता है कि वे सच्चे रहस्यवादी थे। यद्यपि कबीर निरक्षर थे तथापि वे ज्ञानशून्य नही थे। उनके सत्संग, पर्यटन और अनुभव आदि ने उन्हे बहुत ऊपर उठा दिया था। वे एक साधारण व्यक्ति की श्रेणी से परे थे। रामानन्द का शिष्यत्व उनके हिन्दू धार्मिक सिद्धान्तों का कारण था और जुलाहे के घर पालित होना तथा शेख तकी आदि सूफ़ियो का सत्संग होना उनके मुसलमानी विचारो से परिचित होने का कारण था।

इस व्यवहार-ज्ञान से ओत-प्रोत होकर उन्होंने अपने धार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन बड़ी कुशलता के साथ किया और वह कुशलता भी ऐसी जिसमें कबीर के व्यक्तित्व की छाप लगी हुई है। इसके पहले कि हम कबीर के रहस्यवाद की विवेचना करे, रहस्यवाद के सभी अगों पर पूरा प्रकाश डालना उचित है।

रहस्यवाद की विवेचना अत्यंत मनोरंजक होने पर भी दु:साध्य है। वह हमारे सामने एक गहन वन-प्रान्त की भाँति फैली हुई है। उसमें जटिल विचारों की कितनी काली गुफाए है, कितनी शिलाएँ हैं! उसकी दुर्गमता देख कर हमारे हृदय का निर्बल व्यक्ति थक कर बैठ जाता है। सागर के समान इस विषय का विस्तार विश्व-साहित्य भर में फैला हुआ है। न जाने कितने कवियों के हृदय से रहस्यवाद की भावना निर्भर की भाँति प्रवाहित हुई है। उन्होंने उसके अलौकिक आनन्द का अनुभव कर मौन धारण कर लिया है। न जाने कितने योगियों ने इस दैवी अनुभूति के प्रवाह में अपने को बहा दिया है। इसी रहस्यवाद को हम परिभाषा का रूप देना चाहते है, एक अमृत-कुण्ड को मिट्टी के घड़े में भरना चाहते हैं।

परिभाषा

(रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है,) यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता। जीवात्मा की शक्तियाँ इसी शक्ति के अनंत वैभव और प्रभाव से ओत-प्रोत हो जाती हैं। जीवन में केवल उसी दिव्य शक्ति का अनंत तेज अन्तर्हित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल सा जाती है। एक भावना, एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों में प्रकाशित होती है। यही दिव्य संयोग है! आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाती है कि आत्मा मे परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा मे आत्मा के गुणों का प्रदर्शन। कबीर की उल्टबाँसियाँ प्रायः इसी भावना पर चलती हैं।

> **संतो जागत नींद न कीजै।**
> **काल नहिं खाई कल्प नहीं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै॥**
> **उलटि गंगा समुद्रहि सोखै, शशि और सूर गरासै।**
> **नव ग्रह मारि रोगिया बैठे, जल में बिंब प्रकासै॥**
> **बिनु चरणन के दुहुँ दिस धावै, बिनु लोचन जग सूझै॥**
> **ससा उलटि सिंह को ग्रासै, अचरज कोऊ बूझै॥**

इस संयोग में एक प्रकार का उन्माद होता है, नशा रहता है। उस एकांत सत्य से, उस दिव्य-शक्ति से जीव का ऐसा प्रेम हो जाता है कि वह अपनी सत्ता परमात्मा की सत्ता में अन्तर्हित कर देता है। उस प्रेम में चंचलता नहीं रहती, अस्थिरता नहीं रहती। वह प्रेम अमर होता है।

ऐसे प्रेम में जीव की सारी इंद्रियों का एकीकरण हो जाता है। सारी इंद्रियों से एक स्वर निकलता है और उनमें अपने प्रेम की वस्तु के पाने की लालसा समान रूप मे होने लगती है। इंद्रियाँ अपने आराध्य के

प्रेम को पाने के लिए उत्सुक हो जाती है और उनकी उत्सुकता इतनी बढ़ जाती है कि वे उसके विविध गुणों का ग्रहण समान रूप से करती है। अंत में वह सीमा इस स्थिति को पहुँचती है कि भावोन्माद में वस्तुओं के विविध गुण एक ही इंद्रिय पाने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। ऐसी दशा में शायद इंद्रियाँ भी अपना कार्य बदल देती है। एक बार प्रोफेसर जेम्स ने यही समस्या आदर्शवादियों के सामने सुलझाने के लिये रक्खी थी कि यदि इंद्रियाँ अपनी-अपनी कार्य शक्ति एक दूसरे से बदल ले तो संसार में क्या परिवर्तन हो जायेंगे ? उदाहरणार्थ, यदि हम रंगों को सुनने लगें और ध्वनियों को देखने लगे तो हमारे जीवन में क्या अन्तर आ जायगा ! इसी विचार के सहारे हम सेंट मार्टिन का रहस्यवाद से संबंध रखने वाली परिस्थिति समझ सकते है जब उन्होने कहा था :

मैंने उन फूलों को सुना जो शब्द करते थे और उन ध्वनियों को देखा जो जाज्वल्यमान थी।[१]

अन्य रहस्यवादियो का भी कथन है कि उस दिव्य अनुभूति में इंद्रियाँ अपना काम करना भूल जाती है। वे निस्तब्ध-सी होकर अपने कार्य-व्यापार ही नहीं समझ सकती। ऐसी स्थिति मे आश्चर्य ही क्या कि इद्रियाँ अपना कार्य अव्यवस्थित रूप से करने लगें। इसी बात से हम उस दिव्य अनुभूति के आनंद का परिचय पा सकते है जिसमें हमारी सारी इंद्रियाँ मिल कर एक हो जाती हैं, अपना कार्य-व्यापार भूल जाती है। जब हम उस अनुभूति का विश्लेषण करने बैठते हैं तो उसमें हमें न जाने कितने गूढ़ रहस्यों और आश्चर्यमय व्यापारों का पता लगता है।

[१] I heard flowers that sounded and saw notes that shone. अंडरहिल रचित मिस्टिसिज्म पृष्ठ ८

फ़ारसी में शमसी तबरीज़ की कविता में उक्त विचारों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है :--

[१]उसके संमिलन की स्मृति में,
उसके सौन्दर्य की आकांक्षा मे
वे उस मदिरा को—जिसे तू जानता है—
पीकर बेसुध पड़े है ।
कैसा अच्छा हो कि उसकी गलो के द्वार पर
उसका मुख देखने के लिए
वह रात को दिन तक पहुंचा दे ।
तू अपने
शरीर की इंद्रियों को
आत्मा की ज्योति से जगमगा दे ।

रहस्यवाद के उन्माद मे जीव इंद्रिय-जगत से बहुत ऊपर उठ कर

بیاد بزم وصالش در آرزوے جمالش
فتادہ بے خبراند ز آں شراب کہ دانمی
چہ خوش بود کہ ببریش بر آستانہ اگریش
براے دیدن رویش شبے بروز رسانی
حواس جۂ خود را بنور جان تو بر افروز

[१]ब यादे बज़्मे विसालश् दर आरज़ू ए जमालश्
फ़ुतादा बे ख़बर अंद ज़ेआं शराब कि दानी
चि ख़ुश बूअद कि बवूयश बर आस्तान ए कूयश
बराए दीदने रूयश शमे बरोज़ रसानी
हवा से ज़ुल्म ए खुद रा बनूरे जाने तो बर अफ़रोज़
... ...
दीवाने शमसी तबरीज़, पृष्ठ १७६

विचार-शक्ति और भावनाओं का एकीकरण कर अनंत और अंतिम प्रेम के आधार में मिल जाना चाहता है। यही उनकी साधना है, यही उसका उद्देश्य है। उसमे जीव अपनी सत्ता को खो देता है। मैं, मेरा और मुझे का विनाश रहस्यवाद का एक आवश्यक अंग है। एव अपरिमित शक्ति की गोद ही मे 'मैं' और 'मेरा' सदैव के लिए अन्तर्हित हो जाता है। वहाँ जीव अपना आधिपत्य नहीं रख सकता। एक सेवव की भाँति अपने को स्वामी के चरणों मे भुला देना चाहता है। संसा के इन बाह्य बन्धनों का विनाश कर आत्मा ऊपर उठती है, हृदय को भावना साकार बन कर ऊपर की ओर जाती है केवल इसलिए कि वह अपनी सत्ता एक असीम शक्ति के आगे डाल दे हृदय की इस गति में कोई स्वार्थ नहीं, संसार की कोई वासना नही, कोई सिद्धि नहीं, किसी ऐश्वर्य की प्राप्ति नही, केवल हृदय के प्रेम की पूर्ति है। और ऐसा हृदय वह चीज़ है जिसमें केवल भावनाओं का केन्द्र ही नही वरन् जीवन की वह अंतरंग अभिव्यक्ति है जिसके सहारे संसार के बाह्य पदार्थों में उसकी सत्ता निर्धारित होती है। अनन्त सत्ता के सामने जीव अपने को इतने समीप ला देता है कि उसको साधारण भावना में अनंत शक्ति की अनुभूति होने लगती है। अंग्रेजी के एक कवि कौलरिज ने इसी भावना को इस प्रकार प्रकट किया है :—

[१] "हम अनुभव करते है कि हम कुछ नही हैं,

We feel we are nothing for all is
Thou and in Thee.
We feel we are something, that also
has come from Thee.
We know we are nothing, but Thou
wilt help us to be.
Hallowed be Thy name halleluiah.

क्योकि तू सब कुछ है और सब कुछ तुझ में है ।
हम अनुभव करते है कि हम कुछ हैं,
वह भी तुझसे प्राप्त हुआ है ।
हम जानते है कि हम कुछ भी नहीं है,
परन्तु तू हमे अस्तित्व प्राप्त करने में सहायक होगा ।
तेरे पवित्र नाम की जय हो !"

कबीर की निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्तियाँ इस विचार को कितने सरल और स्पष्ट रूप से सामने रखती हैं:—

लोका जानि न भूलौ भाई,
खालिक खलक, खलक में खालिक
सब घट रह्यो समाई ।

अतएव हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते है कि रहस्यवाद अपने नग्न स्वरूप मे एक अलौकिक विज्ञान है जिसमे अनंत के संबन्ध की भावना का प्रादुर्भाव होता है और रहस्यवादी वह व्यक्ति है जो इस संबन्ध के अन्यन्त निकट पहुंचता है । उसे कहता ही नही; उसे जानता ही नही वरन् उस संबंध ही का रूप धारण कर वह अपनी आत्मा को भूल जाता है ।

अब हमें ऐसी स्थिति का पता लगाना है जहाँ आत्मा भौतिक बन्धनों का बहिष्कार कर, संसार के नियमों का प्रतिकार कर, ऊपर उठती है और उस अनंत जीवन मे प्रवेश करती है जहाँ आराधक और आराध्य एक हो जाते है, जहाँ आत्मा और अनंत शक्ति का एकीकरण हो जाता है । जहाँ आत्मा यह भूल जाती है कि वह संसार की निवासनी है और उसका इस दैवी वातावरण में आना एक अतिथि के आने के समान है । वह यह बोलने लगती है कि—

मैं सबनि औरनि मैं हूं सब,
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो ।
कोइ कहौ कबीर कोइ कहौ रामराई हो ।
ना हम बार बूढ़ नाहीं हम,

न हमरे चिलकाई हो।
पटरा न जाऊँ अरबा नहीं आऊँ,
सहजि रहूँ हरि भाई हो।
ओढ़न हमरै एक पछेवरा,
लोग बोलै इकताई हो।
जुलहै तनि बुनि पान न पावल,
फारि बुनी दस ढाई हो।
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल,
तब हमरो नाम रामराई हो।
जग में देखौं जग न देखै मोहि,
इहि कबीर कछु पाई हो।

अँग्रेजी मे जार्ज हरबर्ट ने भी ऐसा कहा है:—

'ओ! अब भी मेरे हो जाओ, अब भी मुझे अपना बना लो, इस 'मेरे' और 'तेरे' का भेद ही न रक्खो।'[१]

ऐसी स्थिति का निश्चित रूप से निर्देश नही किया जा सकता। इस संयोग के पास पहुँचने के पूर्व न जाने कितनी दशाएँ, उनमें भी न जाने कितनी अन्तर्दशाएँ है, जिनमे रहस्यवाद के उपासक अपनी शक्ति भर ईश्वरीय अनुभूति पाना चाहते है। इसीलिए रहस्यवादियों की उत्कृष्टता में अंतर जान पड़ता है। कोई केवल ईश्वर की अनुभूति करता है, कोई उसे केवल प्यार कर सकने योग्य बना सका है, कोई अभिन्नता की स्थिति पर है और कोई पूर्ण रूप से आराध्य के आधीन है। सेंट आगस्टाईन, कबीर, जलालुद्दीन रूमी यद्यपि ऊँचे रहस्यवादी थे तथापि उनकी स्थितियों में अंतर था।

---

[१] O, be mine still make me thine
Or rather make no still thine or mine.
(George Herbert)

परिस्थिति

इस रहस्यवादियों को उद्देश्य-प्राप्ति में तीन परिस्थितियों की कल्पना कर सकते हैं। पहली परिस्थिति तो वह है जहाँ वह व्यक्ति-विशेष अनंत शक्ति से अपना संबंध जोड़ने के लिए अग्रसर होता है। वह संसार की सीमा को पार कर ऐसे लोक में पहुंचता है जहाँ भौतिक बंधन नहीं, जहाँ संसार के नियम नहीं, जहाँ उसे अपने शारीरिक अवरोधों की परवाह नहीं है। वह ईश्वर के समीप पहुँचता है और दिव्य-विभूतियों को देख कर चकित हो जाता है। यह रहस्यवादी की प्रथम परिस्थिति है। इस परिस्थिति का वर्णन कबीर ने बड़ी सुन्दर रीति से किया है :—

घट घट में रटना लगि रही,
परघट हुआ अलेख जी।
कहुँ चोर हुआ, कहुँ साह हुआ,
कहुँ बाम्हन है कहुँ सेख जी॥

कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ संसार की सभी वस्तुएँ अनंत शक्ति में विश्राम पाती है और सभी अनंत सत्ता में आकर मिल जाती है। यहाँ रहस्यवादी ने अपने लिए कुछ भी नहीं कहा है, वह चुप है। उसे ईश्वर की इस अनंत शक्ति पर आश्चर्य-सा होता है। वह मौन होकर इन बातों को देखता-सुनता है। यद्यपि ऐसे समय वह अपना व्यक्तित्व भूल जाता है। पर ईश्वर की अनुभूति स्वयं अपने हृदय में पाने में असमर्थ रहता है। इसे हम रहस्यवादियों की प्रथम स्थिति कहेंगे।

द्वितीय स्थिति तब आती है जब आत्मा परमात्मा से प्रेम करने लग जाती है। भावनाएँ इतनी तीव्र हो जाती हैं कि आत्मा में एक प्रकार का उन्माद या पागलपन छा जाता है। आत्मा मानों प्रकृति का रूप रख पुरुष—आदि पुरुष—से प्यार करती है। संसार की अन्य वस्तुएँ उसकी नजर से हट जाती हैं। आश्चर्य चकित होने की अवस्था निकल जाती है और रहस्यवादी चुपचाप अपने आराध्य को प्यार करने लग जाता है। वह प्यार इतना प्रबल होता है कि उनके समक्ष विश्व की कोई

चीज स्थिर नहीं रह सकती। वह प्रेम बरसात के उस प्रबल नाले की भाँति होता है जिसके सामने कोई भी वस्तु नही ठहर सकती—पेड़, पत्थर, झाड़, झंखाड़ सब उस प्रवाह में बह जाते है। उसी प्रकार इस प्रेम के आगे कोई भी वासना नहीं ठहर सकती। सभी भावनाएँ, हृदय की सभी वासनाएँ बड़े जोर से एक ओर को बह जाती है और एक—केवल एक—भाव रह जाता है, और वह है प्रेम का प्रवाह। जिस प्रकार किसी जल-प्रपात के शब्दों में समीप के सभी छोटे-छोटे स्वर अन्तर्हित ही हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार उस ईश्वरीय प्रेम में सारे विचार या तो लुप्त ही हो जाते है अथवा उसी प्रेम के बहाव में बह जाते हैं। फिर कोई भावना उस प्रेम के प्रबल प्रवाह को रोकने के लिए आगे नही आ सकती।

रेनाल्ड ए० निकल्सन ने लंदन यूनीवर्सिटी मे "सूफीमत में व्यक्तित्व" पर तीन भाषण दिये थे। वे सूफीमत के सम्बन्ध में कहते है :—

[१]यह सत्य है कि परमात्मा के मिलापानुभव में मध्यस्थ के लिए कोई स्थान नहीं है। वहाँ तो केवल एकान्त दैवी सम्मिलन की अनुभूति ही हृदयंगम होती है वस्तुतः हम यह भावना विशेषकर प्राचीन सूफियों में पाते हैं कि परमात्मा ही उपासना की एक मात्र वस्तु हो, दूसरी वस्तुओं

---

[१] It is true that in the experience of union with God, there is no room for a Madiator Here the absolute Divine Unity is realised. And of course, we find especially among the ancient Sufis, a feeling that God must be the sole object of aboration, that any regard for other objects is an offence against Him.

रिनाल्ड ए० निकल्सन रचित "दि आइडिया ऑव् पर्सनालिटी इन सूफीज्म", पृष्ठ ६२

का ध्यान करना उसके प्रति अपराध करना है।

'तज़किरातुल औलिया' में भी इसी मत की पुष्टि होती है। उसमें बसरा की स्त्री-संत राबेआ के विषय में लिखा है :—

[1]कहा है कि उसने (राबेआ ने) कहा—रसूल को मैंने स्वप्न में देखा। रसूल ने पूछा, "ए राबेआ, मुझसे मैत्री रखती हो?"

जवाब दिया "ऐ अल्लाह के रसूल, कौन है जो तुमसे मैत्री नहीं रखता, किन्तु ईश्वर के प्रेम ने मुझे ऐसा बाँध लिया है कि उससे अन्य के लिए मेरे हृदय में मित्रता अथवा शत्रुता का स्थान नहीं रह गया है।"

रहस्यवादी की यह एक गंभीर परिस्थिति है जहाँ वह अपने आराध्य के प्रेम में इतना ओत-प्रोत हो जाता है कि उसे अन्य कुछ सोचने का अवकाश ही नहीं मिलता।

इसके पश्चात् रहस्यवादियों की तीसरी स्थिति आती है जो रहस्यवाद की चरम सीमा कहला सकती है। इस दशा में आत्मा और परमात्मा का इतना एकीकरण हो जाता है कि फिर उनमें कोई भिन्नता नहीं रहती। आत्मा अपने में परमात्मा का अस्तित्व मानती है और परमात्मा के गुणों को प्रकट करती है। जिस प्रकार प्रारंभिक अवस्था में आग

نقل است که گفت رسول رابخواب دیدم گفت یارا بعه مرا دوست داری گفتم یا رسول الله که برد ترا دوست ندارد لیکن محبت حق مرا چناں فرد گرفته است که دشمنی و دستي غیر او در دام هاے نمائنده است ۔

[1]**नक़्ल अस्त कि गुफ़्त रसूल रा बख़्वाब दीदम गुफ़्त या राबेआ, मरा दोस्त दारी—गुफ़्तम या रसूल अल्लाह कि बूअद तुरा दोस्त न दारद। लेकिन मुहब्बते हक़ मरा चुनां फ़रोगिरिफ़्ता कस्त कि दुश्मनी व दोस्ती ए ग़ैरे ऊरा दर दिलम जाय न मांदा अस्त॥**

तज़किरातुल औलिया, पृष्ठ ४६

मत्बा मुजतबाई देहली,

महम्मद अब्दुल अहद द्वारा सम्पादित, १३२७ हिजरी।

और लोहे का एक गोला, ये दोनों भिन्न है पर जब आग से तपाये जाने पर गोला भी लाल होकर अग्नि का स्वरूप धारण कर लेता है तब उस लोहे के गोले में वस्तुओं के जलाने की वही शक्ति आ जाती है जो आग में है। यदि गोला आग से अलग भी रख दिया जाय तो भी लाल स्वरूप रख कर अपने चारों ओर आँच फेकता रहेगा। यही हाल आत्मा और परमात्मा के संसर्ग से होता है। यद्यपि प्रारंभिक अवस्था में माया के वातावरण में आत्मा और परमात्मा दो भिन्न शक्तियाँ जान पड़ती हैं पर जब दोनो आपस मे मिलती है तो परमात्मा के गुणों का प्रवाह आत्मा में इतने अधिक वेग से होता है कि आत्मा के स्वाभाविक निज के गुण तो लुप्त हो जाते हैं और परमात्मा के गुण प्रकट जान पड़ते हैं। वही अभिन्न सम्बन्ध रहस्यवादियो की चरम सीमा है। इसका फल क्या होता है !

—गंभीर एकान्त सत्य का परिचय

—पर शान्ति की अवतारणा

—जीवन में अनंत शक्ति और चेतना

—प्रेम का अभूतपूर्व आविर्भाव

—श्रद्धा और भय ......

—भय, वह भय नहीं जिसमे जीवन की शक्तियों का नाश हो जाता है किन्तु वह भय जो आश्चर्य से प्रादुर्भूत होता है और जिसमें प्रेम, श्रद्धा और आदर की महान शक्तियाँ छिपी रहती है। ऐसी स्थिति में जीवन में व्यापक शक्तियाँ आती हैं और आत्मा इस बंधन-मय संसार से ऊपर उठकर उस लोक में पहुँच जाती है जहाँ प्रेम का अस्तित्व है और जिसके कारण आत्मा और परमात्मा में कुछ भिन्नता प्रतीत नहीं होती। अनंत की दिव्य विभूति जीवन का आवश्यक अंग बनाती है और शरीर की सारी शक्तियाँ निरालम्ब होकर अपने को अनंत की गोद में छोड़ देती हैं।

जिस प्रकार मछलियाँ समुद्र में तैरती हैं, जिस प्रकार पक्षी वायु में झूलते हैं, तेरे आलिंगन से हम विमुख नहीं हो सकते। हम साँस लेते है और तू वहाँ वर्तमान है।[१]

इस प्रकार की रहस्यवादी दैवी शक्ति से युक्त होकर संसार के अन्य मनुष्यों से बहुत ऊपर उठ जाता है। उसका अनुभव भी अधिक विस्तृत और आध्यात्मिक हो जाता है। उसका संसार ही दूसरा हो जाता है और वह किसी दूसरे ही वातावरण में विचरण करने लगता है।

किंतु रहस्यवादी की यह अनुभूति व्यक्तिगत ही समझनी चाहिए। उसका एक कारण है। वह अनुभूति इतनी दिव्य, इतनी अलौकिक होती है कि संसार के शब्दों में उसका स्पष्टीकरण असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। वह कांति दिव्य है, अलौकिक है। हम उसे साधारण आँखों से नहीं देख सकते। वह ऐसा गुलाब है जो किसी बाग़ में नहीं लगाया जा सकता, केवल उसकी सुगंधि ही पाई जा सकती है। वह ऐसी सरिता है कि उसे हम किसी प्रशस्त वन में नहीं देख सकते वरन् उसे कलकल नाद करते हुए ही सुन सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार की भाषा इतनी ओछी है कि उसमें हम पूर्ण रीति से रहस्यवाद की अनुभूति प्रकट ही नहीं कर सकते। दूसरी बात यह है कि रहस्यवाद की यह भावुक विवेचना समझने की शक्ति भी तो सर्वसाधारण में नहीं है। रहस्यवादी अपने अलौकिक आनंद में विभोर होकर यदि कुछ कहता है तो लोग उसे पागल समझते हैं। साधारण मनुष्यों के विचार इतने उथले हैं कि उनमें रहस्यवाद की अनुभूति समा ही नहीं सकती। इसलिए

---

१ As fishes swim in briny sea
As fouls do float in the air,
From the embrace we can not flee,
We breathe and Thou art there.
(John Stuart Blackie)

'अलहल्लाज मंसूर' अपनी अनुभूति का गीत गाते गाते थक गया पर लोग उसे समझ ही नहीं सके। लोगों ने उसे ईश्वरीय सत्ता का विनाश करनेवाला समझ कर फाँसी दे दी। इसी लिए रहस्यवादियों को अनेक स्थलों पर चुप रहना पड़ता है। उसका कारण वे यही बतला सकते हैं कि :—

'नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत।'

इस विचार को निकलसन और ली द्वारा सम्पादित और क्लैरेंडन प्रेस आक्सफ़र्ड से प्रकाशित 'दि आक्सफ़र्ड बुक आव् इंग्लिश मिस्टिकल वर्स' की प्रस्तावना में हम बड़े अच्छे रूप में पाते हैं :—

वतुस्तः रहस्यवाद का सारभूत तत्त्व कभी प्रकाशित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह उस अनुभव से पूर्ण है जो शाब्दिक अर्थ में अंतरतम पवित्र प्रदेश का अव्यक्त रहस्य है और इसीलिए अपमानित होने के भय से रहित है। क्योंकि केवल वे ही उसे समझ सकते हैं जो उस पवित्र प्रदेश में प्रवेश कर पाते हैं, अन्य नहीं। यहाँ तक कि प्रविष्ट हुए व्यक्ति भी फिर बाहर आने पर उस भाषा की असमर्थता के कारण जिसके द्वारा वे अपने उत्कृष्ट व्यापार को प्रकट करते, अपने ओठों को बन्द पाते हैं (कुछ बोल नहीं सकते)। जो कुछ उन्होंने देखा अथवा जाना है उसके प्रकाशित करने के लिए प्रतिदिन के व्यवहार की भाषा में कोई शब्द नहीं है और कम से कम क्या वे तर्क या न्याय की विचार-शृंखला के साधनों अथवा वाक्यांशों से अपने विचारों के पर्याप्त प्रदर्शन की आशा रख सकते हैं ?[१]

---

१ The most essential part of mysticism can not, of course, ever pass into expression, in as much as it consists in an experience which is in the most literal sense ineffable. The secret of the inmost sanctuary is not in

फिर रहस्यवादी कविता ही में क्यों अपने विचारों को अधिकतर प्रकट करते हैं, इसका कारण भी सुन लीजिए :—

गद्य के अपरिष्कृत विषय को ऐसे रूप में परिवर्तित करने की निराश चेष्टा में जिससे उनकी आवश्यकता की पूर्ति किसी रूप में हो सके, बहुत से (रहस्यवादी) कविता की ओर जाते हैं जो उनके अनुभव के कुछ संकेतों को हीन से हीन पर्याप्त रूप में प्रकाशित कर सकें। अपनी कविता की मुग्धध्वनि से, उसकी अप्रस्तुत रूप से अपरिमित व्यंग्य शक्ति के विलक्षण गुण से, उसकी लचक से वे प्रयत्न करते है कि उसी अनंत सत्य के कुछ संकेतों को प्रकाशित कर दें जो सदैव सब वस्तुओं में निहित हैं। ठीक उसी ध्वनि, उसी तेज और उनकी रचनाओं के ठीक उसी उत्कृष्ट जादू से, उसी प्रकाश से कुछ किरणें फूट निकलती है जो वास्तव में दिव्य हैं।[१]

---

danger of profanation, since none but those who penetrate into that sanctuary can understand it, and those even who penetrate find, on passing out again, that their lips are sealed by the sheer inefficiency of language as a medium for conveying the sense of their supreme adventure. The speech of every day has no terms for what they have seen or known' and least of all can they hope for adequate expression through the phrases and apparatus of logical reasoning ?

[१] In despair of moulding the stubborn stuff of prose into a form that will even approximate to their need, many of them turn, there-

अब कबीर के रहस्यवाद पर दृष्टि डालिए।

कबीर का रहस्यवाद अपनी विशेषता लिए हुए है। वह एक ओर तो हिन्दुओं के अद्वैतवाद के क्रोड़ में पोषित है और दूसरी ओर मुसलमानों के सूफी-सिद्धान्तो को स्पर्श करता है। इसका विशेष कारण यही है कि कबीर हिंदू और मुसलमान दोनों प्रकार के सन्तों के सत्संग में रहे और वे प्रारम्भ से ही यह चाहते थे कि दोनों धर्म वाले आपस में दूध-पानी की तरह मिल जायँ इसी विचार के वशीभूत होकर उन्होंने दोनों मतों से सम्बंध रखते हुए अपने सिद्धातों का निरूपण किया। रहस्यवाद में भी उन्होंने अद्वैतवाद और सूफी मत की 'गंगा-जमुनी' साथ ही बहा दी।

अद्वैतवाद

अद्वैतवाद ही मानो रहस्यवाद का प्राण है। शंकर के अद्वैतवाद में जो ईसा की ८वीं सदी में प्रादुर्भूत हुआ, आत्मा और परमात्मा की

---

fore, to poetry as the medium which will convey least inadequately some hints of their experience. By the rhythm of the glamour of their verse, by its peculiar quality of suggesting infinitely more than it ever says directly, by its elasticity they struggle to give what hints they may of the Reality that is eternally underlying all things and it is precisely through that rhythm and that glamour and the high enchantment of their writing that some rays gleam from the light which is supernal.

दि आक्सफ़र्ड बुक आॅव मिस्टिकल वर्स—इण्ट्रोडक्शन।

वस्तुतः एक ही सत्ता है। माया के कारण ही परमात्मा में नाम और रूप का अस्तित्व है। इस माया से छुटकारा पाना ही मानों आत्मा और परमात्मा की फिर एक बार एक ही सत्ता स्थापित करना है। आत्मा और परमात्मा एक ही शक्ति के दो भाग हैं जिन्हें माया के परदे ने अलग कर दिया है। जब उपासना या ज्ञानार्जन पर माया नष्ट हो जाती है तब दोनों भागों का पुनः एकीकरण हो जाता है। कबीर इसी बात को इस प्रकार लिखते हैं :—

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथो गियानी ॥

एक घड़ा जल में तैर रहा है। उस घड़े में थोड़ा पानी भी है। घड़े के भीतर जो पानी है वह घड़े के बाहर के पानी से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं है। किंतु वह इसलिए अलग है क्योंकि घड़े की पतली चादर उन दोनों अंशों को मिलने नहीं देती, जिस प्रकार माया ब्रह्म के दो स्वरूपों को अलग रखती है। कुंभ के फूटने पर पानी के दोनों भाग मिलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार माया के आवरण के हटने पर आत्मा और परमात्मा का संयोग हो जाता है। यही अद्वैतवाद कबीर के रहस्यवाद का आधार है।

दूसरा आधार है मुसलमानों का सूफ़ीमत। हम यह निश्चय रूप से नहीं कह सकते कि उन्होंने सूफ़ीमत के प्रतिपादन के लिए ही अपने 'शब्द' कहे हैं पर यह निश्चय है कि मुसलमानी संस्कारों के कारण उनके विचारों में सूफ़ीमत का तत्त्व मिलता है।

सूफ़ीमत

ईसा की आठवीं शताब्दी में इस्लाम धर्म में एक विप्लव हुआ। राजनीतिक नहीं, धार्मिक। पुराने विचारों के कट्टर मुसलमानों का एक विरोधी दल उठ खड़ा हुआ। यह फ़ारस का एक छोटा-सा संप्रदाय था। इसने परंपरागत मुस्लिम आदर्शों का ऐसा घोर विरोध किया कि कुछ समय तक इस्लाम के धार्मिक क्षेत्र में उथल-पुथल मच गई। इस संप्रदाय ने

संसार के सारे सुखों को तिलांजलि-सी दे दी । संसार के सारे ऐश्वर्यों और सुखों को स्वप्न की भाँति भुला दिया । बाह्य श्रृंगार और बनावटी बातों से उसे एक बार ही घृणा हो गई । उसने एक स्वतंत्र मत की स्थापना की । सादगी और सरलता ही उसके बाह्य जीवन की अभिरुचि बन गई । कीमती कपड़े और स्वादिष्ट भोजन से उसे घृणा हो गई । सरलता और सादगी का आदर्श अपने सम्मुख रख कर उस संप्रदाय ने अपने शरीर के वस्त्र बहुत ही साधारण रक्खे । वे सफेद ऊन के साधारण वस्त्र थे । फ़ारसी में सफेद ऊन को 'सूफ' कहते हैं । इसी शब्दार्थ के अनुसार सफेद ऊन के वस्त्र पहिनने वाले व्यक्ति 'सूफ़ी' कहलाने लगे। उनके परिधान के कारण ही उनके नाम की सृष्टि हुई ।

सूफ़ीमत में भी यद्यपि बंदे और खुदा का एकीकरण हो सकता है पर उसमें माया का कोई विशेष स्थान नहीं है । जिस प्रकार एक पथिक अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए प्रस्थान करता है, मार्ग में उसे कुछ स्थल पार करने पड़ते हैं, उसी प्रकार सूफ़ीमत में आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए व्यग्र होकर अग्रसर होती है । परमात्मा से मिलने के पहले आत्मा को चार दशाएँ पार करनी पड़ती हैं :—

१. शरियत (شریعت)
२. तरीक़त (طریقت)
३. हक़ीक़त (حقیقت)
४. मारिफ़त (معرفت)

इस मारिफ़त में जाकर आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन होता है । वहाँ आत्मा स्वयं 'फ़ना' (فنا) होकर 'बक़ा' (بقا) के लिए प्रस्तुत होती है । इस प्रकार आत्मा में परमात्मा का अनुभव होने लगता है और 'अनलहक़' (انا الحق) सार्थक हो जाता है । अपने अनुराग में चूर होकर आत्मा यह आध्यात्मिक यात्रा पार कर ईश्वर से मिलती है और तब दोनों शराब-पानी की तरह मिल जाते हैं ।

दूसरी बात यह है कि सूफ़ीमत में प्रेम का अंश बहुत महत्त्वपूर्ण है ।

प्रेम ही कर्म है, और प्रेम ही धर्म है। सूफ़ीमत मानों स्थान-स्थान पर प्रेम के आवरण से ढका हुआ है। उस सूफ़ीमत के बाग़ को प्रेम के फुहारे सदा सींचते रहते हैं। निस्वार्थ प्रेम ही सूफ़ीमत का प्राण है। फ़ारसी के जितने सूफ़ी कवि हैं वे कविता में प्रेम के अतिरिक्त कुछ जानते ही नहीं हैं। प्रमाणस्वरूप जलालुद्दीन रूमी और जामी के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं।

प्रेम के साथ इस सूफ़ीमत में प्रेम का नशा भी प्रधान है। उसमें नशे के खुमार का और भी महत्त्वपूर्ण अंश है। उसी नशे के खुमार की बदौलत ईश्वर की अनुभूति का अवसर मिलता है। फिर संसार की कोई स्मृति नहीं रहती, शरीर का कुछ ध्यान नहीं रहता। केवल परमात्मा की "लौ" ही सब कुछ होती है। कबीर ने भी एक स्थान पर लिखा है :—

> हरि रस पीया जानिये, कबहुं न जाय खुमार।
> मैं मंता घूमत फिरै, नाहीं तन की सार॥

एक बात और है। सूफ़ीमत में ईश्वर की भावना स्त्री रूप में मानी गई है। वहाँ भक्त पुरुष बन कर ईश्वर रूपी स्त्री की प्रसन्नता के लिये सौ जान से निसार होता है, उसके हाथ की शराब पीने को तरसता है, उसके द्वार पर जाकर प्रेम की भीख माँगता है। ईश्वर एक दैवी स्त्री के रूप में उसके सामने उपस्थित होता है। उदाहरणार्थ रूमी की एक कविता का भावार्थ यह है :—

प्रियतमा के प्रति प्रेमी की पुकार

मेरे विचारों के संघर्ष से मेरी कमर टूट गई है।
ओ प्रियतमे, आओ और करुणा से मेरे सिर का स्पर्श करो।
मेरे सिर से तुम्हारी हथेली का स्पर्श मुझे शांति देता है।
तुम्हारा हाथ ही तुम्हारी उदारता का सूचक है।
मेरे सिर से अपनी छाया को दूर मत करो।

मैं संतप्त हूँ, संतप्त हूँ। संतप्त हूँ।

................।

ऐ, मेरा जीवन ले लो,

तुम जीवन-स्रोत हो क्योंकि तुम्हारे विरह में मैं अपने जीवन से क्लांत हूँ। मैं वह प्रेमी हूँ जो प्रेम के पागलपन में निपुण है।

मैं विवेक और बुद्धि से हैरान हूँ।

अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अद्वैतवाद में आत्मा और परमात्मा के एकीकरण होने में चिंतन और माया का बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग है और सूफ़ीमत में उसी के लिए हृदय की चार अवस्थाओं और प्रेम का। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि कबीर का रहस्यवाद हिन्दुओं के अद्वैतवाद और मुसलमानों के सूफ़ीमत पर आश्रित है। इसलिए कबीर ने अपने रहस्यवाद के स्पष्टीकरण में दोनों की—अद्वैतवाद और सूफ़ीमत की—बातें ली हैं। फलतः उन्होंने अद्वैतवाद से माया और चिंतन तथा सूफ़ीमत से प्रेम लेकर अपने रहस्यवाद की सृष्टि की है। सूफ़ीमत के स्त्री-रूप भगवान की भावना ने अद्वैतवाद के पुरुष-रूप भगवान के सामने सिर झुका लिया है। इस प्रकार कबीर ने दोनों सिद्धातों से अपने काम के उपयुक्त तत्त्व लेकर शेष बातों पर ध्यान ही नहीं दिया है।

इस विषय में कबीर की कविता का उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत होता है।

परमात्मा की अनुभूति के लिए आत्मा प्रेम से परिपूर्ण होकर अग्रसर होती है। वह सांसारिकता का बहिष्कार कर दिव्य और अलौकिक वातावरण में उठती है। वह उस ईश्वर के समीप पहुँच जाती है जो इस विश्व का निर्माणकर्त्ता है। उस ईश्वर का नाम है—सत्पुरुष। सत्पुरुष के संसर्ग से वह आत्मा उस दैवी शक्ति के कारण हतबुद्धि सी हो जाती है। वह समझ ही नहीं सकती कि परमात्मा क्या है, कैसा है! वह अवाक् रह जाती है। वह ईश्वरीय शक्ति अनुभव करती है पर उसे प्रकट नहीं कर सकती। इसीलिए 'गूंगे के गुड़' के समान वह स्वयं तो परमात्मा-

नुभव करती है पर प्रकट में कुछ भी नहीं कह सकती । कुछ समय के बाद जब उसमें कुछ बुद्धि आती है और कुछ कुछ ज़बान खुलती है तो वह एकदम से पुकार उठती है :—

कहहि कबीर पुकारि के, अद्भुत कहिए ताहि ।

उस समय आत्मा में इतनी शक्ति ही नहीं होती कि वह परमात्मा की ज्योति का निरूपण करने में समर्थ हो । वह आश्चर्य और जिज्ञासा की दृष्टि से परमात्मा की ओर देखती रहती है । अंत में बड़ी कठिनता से कहती है :—

वर्णहुं कौन रूप औ रेखा,
दोसर कौन आहि जो देखा ।
ओंकार आदि नहि वेदा,
ताकर कहहु कौन कुल भेदा ॥

× × ×

नहि जल, नहि थल, नहि थिर पवना
को धरै नाम हुकुम को बरना
नहि कछु होति दिवस औ राती ।
ताकर कहुं कौन कुल जाती ॥
शून्य सहज्ज मन स्मृति ते प्रगट भई एक जोति ।
ता पुरुष की बलिहारी, निरालंब जे होति ॥

रमैनी ६

यहाँ आत्मा सत्पुरुष का रूप देख कर मुग्ध हो जाती है । धीरे-धीरे आत्मा परमात्मा की ज्योति में लीन होकर विश्व की विशालता का अनुभव करती है और उस समय वह आनंदातिरेक से परमात्मा के गुण वर्णन करने लगती है :—

जाहि कारण शिव अजहुं वियोगी ।
अंग विभूति लाइ भे जोगी ॥

शेष सहज सुख पार न पावैं ।
सो अब खसम सहित समुझावैं ।।

इतना सब कहने पर भी अन्त में यही शेष रह जाता है कि—

तहिया गुप्त स्थूल नहिं काया ।
ताके शोक न ताके माया ।।
कमल पत्र तरंग इक माहीं ।
संग ही रहै लिप्त पै नाहीं ।।
आस ओस अंडन में रहई ।
अगनित अंडन कोई कहई ।।
निराधार आधार लै जानी ।
राम नाम लै उचरै बानी ।।

× ×

भर्मक बाँधल ई जागत, कोइ न करै बिचार ।
हरि की भक्ति जाने बिना, भव बूड़ि मुआ संसार ।।

रमैनी ७४

इसी प्रकार संसार के लोगों को उपदेश देती हुई आत्मा कहती है :—

जिन यह चित्र बनाइयाँ, साँचो सो सूरति हार ।
कहहि कबीर ते जन भले, जे चित्रवंतहिं लेहिं बिचार ।।

इस प्रेम की स्थिति बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँचती है कि आत्मा स्वयं परमात्मा की स्त्री बनकर उसका एक भाग बन जाती है । यही इस प्रेम की उत्कृष्ट स्थिति है ।

एक अंड उंकार ते, सब जग भया पसार ।
कहहि कबीर सब नारी राम की, अविचल पुरुष भतार ।।

रमैनी २७

और अन्त में आत्मा कहती है :—

हरि मोर पीव माई, हरि मोर पीव ।
हरि बिन रहि न सकै मोर जीव ॥
हरि मोरा पीव मैं राम की बहुरिया ।
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया ॥

शब्द ११७

और

जो पै पिय के मन नाँहि भाये ।
तौ का परोसिन के दुलराये ॥
का चूरा पाइल झमकाएं ।
कहा भयो बिछुआ ठमकाएँ ॥
का काजल सेंदुर कै दीये ।
सोलह सिंगार कहा भयो कीये ॥
अंजन मंजन करै ठगौरी ।
का पचि मरै निगोड़ी बौरी ।
जो पै पतिव्रता है नारी ॥
कैसे ही रहौ सो पियहिं पियारी ॥
तन मन जोबन सौंपि सरीरा ।
ताहि सुहागिन कहै कबीरा ॥

इस रहस्यवाद की चरम सीमा उस समय पहुँच जाती है जब आत्मा पूर्ण रूप से परमात्मा में संबद्ध हो जाती है, दोनों में कोई अंतर नहीं रह जाता। यहाँ आत्मा अपनी आकांक्षा पूर्ण कर लेती है और फिर आत्मा और परमात्मा की सत्ता एक हो जाती है। कबीर उस स्थिति का अनुभव करते हुए कहते हैं :—

हरि मरि हैं तो हम हूँ मरि हैं ।
हरि न मरै हम काहे को मरि हैं ॥

आत्मा और परमात्मा में इस प्रकार मिलन हो जाता है कि एक के विनाश से दूसरे का विनाश और एक के अस्तित्व से दूसरे का अस्तित्व

सार्थक होता हैं। फ़ारसी में इसी विचार का एक बड़ा सुन्दर अवतरण है। निकल्सन ने उसका अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया है, उसका तात्पर्य यही है :—

जब वह (मेरा जीवन तत्त्व) 'दूसरा' नहीं कहलाता तो मेरे गुण उसके (प्रियतमा) के गुण हैं और जब हम दोनो एक है, तो उसका बाह्य रूप मेरा है। यदि वह बुलाई जाय तो मैं उत्तर देता हूँ और यदि मैं बुलाया जाता हूँ तो वह मेरे बुलाने वाले को उत्तर देती है और कह उठती है 'लब्बयक' (जो आज्ञा) । वह बोलती है मानों मैं ही वार्तालाप कर रहा हूँ, उसी प्रकार यदि मैं कोई कथा कहता हूँ तो मानो वही उसे कहती है। हम लोगों के बीच में से मध्यम पुरुष सर्वनाम ही उठ गया है। और उसके न रहने से मैं विभिन्न करने वाले समाज मे ऊपर उठ गया हूँ।[१]

इस चरम सीमा को पाना ही कबीर के उपदेश का तत्त्व था। उनकी

---

[१] 'When in (essence) is not called two my attributes are hers, and since we are one her outward aspect is mine.

If she be called, 'tis I who answer, and I am summoned she answers him who calls me and cries labbayak (At thy Service.)

And if she speak, 'tis I who converse. Like wise if I tell a story, 'its she that tells it.'

The pronoun of second person has gone out of use between us, and by its removal I am raised above the sect who separate.

दि आइडिया ऑव् पर्सोनेलिटी इन सूफ़ीज़्म, पृष्ठ २०

उल्टबाँसियों में इसी आत्मा और परमात्मा का रहस्य भरा हुआ है।

इस प्रकार रहस्यवाद की पूरी अभिव्यक्ति हम कबीर की कविता में पाते हैं।

अब हमें कबीर के रूपकों पर विचार करना है।

जो रहस्यवादी अपने भावों को थोड़ा बहुत प्रकट कर सके है उनके विषय में एक बात और विचारणीय है। वह यह कि ये रहस्यवादी स्वभावतः अपने विचारों को किसी रूपक में प्रकट करते हैं। वे स्पष्ट रूप से अपने भाव कहने में असमर्थ हो जाते है क्योंकि अनुभूत भाव-सौंदर्य इतना अधिक होता है कि वे साधारण शब्दों में उसे व्यक्त नहीं कर सकते। उनका भावोन्माद इतना अधिक होता है कि बोलचाल के साधारण शब्द उनका बोझ नहीं सम्हाल सकते। इसीलिए उन्हे अपने भावों को प्रकट करने के लिये रूपकों की शरण लेनी पड़ती है। अँग्रेजी में भी जो रहस्यवादी कवि हो गए हैं उन्होंने भी इस रूपक भाषा[१] को अपनाया है। यह रूपक उन रहस्यवादियों के हृदय में इस प्रकार बिना श्रम के चला जाता है जिस प्रकार किसी ढालू जमीन पर जल की धारा। फल यह होता है कि रहस्यवादी स्वयं भूल जाता है कि जो कुछ वह भावोन्माद में, आनंदोद्रेक में कह गया वह लोगों को किस प्रकार समझावे, इसीलिए समालोचकगण चक्कर में पड़ जाते हैं कि अमुक रूपक के क्या अर्थ है ? उस पद का क्या अर्थ हो सकता है। यदि समालोचक वास्तव में कवि के हृदय की दशा जान जावें तो वे कवि को पागल कहेंगे और न प्रलापी।

कबीर का रहस्यवाद बहुत गहरा है। उन्होंने संसार के परे अनंत शक्ति का परिचय पाकर उसे अपने को संबद्ध कर लिया है। उसी को उन्होंने अनेक रूपकों में प्रदर्शित किया है। एक रूपक लीजिए :—

---

[१]The Language of Symbols.

हरि मोर रहटा, मैं रतन पिउरिया।
हरि का नाम ले कतति बहुरिया॥
छौ मास तागा बरस दिन कुकरी।
लोग कहैं भल कातल बपुरी॥
कहहि कबीर सूत भल काता।
चरखा न होय मुक्ति कर दाता॥

देखने से अर्थ सरल ज्ञात होगा, पर वास्तव में वह कितनी गहरी भावनाओं से ओत-प्रोत है यह विचारणीय है। रूपक भी चरखे से लिया गया है, इसलिए कि कबीर जुलाहे थे, ताना-बाना और चरखा उनकी आँखों के सामने सदैव झूलता होगा। उनकी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति पर किसी को आश्चर्य न होगा। अब यदि चरखे का रूपक उस पद से हटा लिया जाय तो विचार की सारी शक्ति ढीली पड़ जायगी और भावों का सौंदर्य बिखर जायगा। उसका यह कारण है कि रूपक बिलकुल स्वाभाविक है। कबीर को चलते-फिरते यह रूपक सूझ गया होगा। स्वाभाविकता ही सौंदर्य है। अतएव इस स्वाभाविक रूपक को हटाना सौंदर्य का नाश करना है। यहाँ यह स्पष्ट है कि आत्मा और परमात्मा का संबंध चित्रित करने में रूपक का सहारा कितना महत्त्व रखता है। रहस्यवादियों ने तो यहाँ तक किया है कि यदि उन्हें अपने भावों के उपयुक्त शब्द नहीं मिले तो उन्होने नये गढ़ डाले है। मकड़ी के जाले के समान उनकी कविता विस्तृत है, उससे नये शब्द और भाव उसी प्रकार निर्मित किए गए हैं जिस प्रकार एक मकड़ी अपनी इच्छानुसार धागे बनाती और मिटाती है। कबीर के उसी रूपक का परिवर्धित उदाहरण लीजिए—

जौ चरखा जरि जाय, बढ़ैया नामरै।
मैं कातौं सूत हज़ार, चरखुला जिन जरै॥
बाबा, मोर ब्याह कराव, अच्छा बरहि तकाय।
जो लौं अच्छा बर न मिलै, तौ लौं तुमहि बिहाय॥

प्रथम नगर पहुँचते, परिगो सोग संताप।
एक अचंभा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप।
समधी के घर समधी आये, आये बहू के भाय।
गोडे चूल्हा दै दै चरखा दियो दिढाय।
देवलोक मर जायँगे, एक न मरै बढ़ाय।
यह मन रञ्जन कारणे चरखा दियो दिढ़ाय।
कहहि कबीर सुनो हो संतो चरखा लखै जो कोय।
जो यह चरखा लखि परै ताको आवागमन न होय।

बीजक शब्द ६८

इसका साधारण अर्थ यही है :—

यदि चरखा जल भी जाय तो उसका बनाने वाला बढ़ई नहीं मर सकता, पर यदि मेरा चरखा न जलेगा तो मैं उससे हजार सूत कातूंगी। बाबा, अच्छा वर खोज कर मेरा विवाह करा दीजिए, और जब तक अच्छा वर न मिले तब तक आप ही मुझसे विवाह कर लीजिए। नगर में प्रथम बार पहुँचते ही शोक और दुःख सिर आ पड़े। एक आश्चर्य हमने देखा है कि पिता के साथ पुत्री ने अपना विवाह कर लिया। फलतः एक समधी के घर दूसरे समधी आये और बहू के यहाँ भाई। चूल्हा में गोड़ा देकर (चरखे के विविध भागों को सटा कर) चरखा और मजबूत कर दिया। स्वर्ग में रहने वाले सभी देव मर जायँगे पर वह बढ़ई नहीं मर सकता जिसने मन को प्रसन्न रखने के लिए चरखे को और सुदृढ़ कर दिया है। कबीर कहते हैं, ओ संतो सुनो, जो कोई इस चरखे का वास्तविक रूप देखता है, जिसने इस चरखे को एक बार देख लिया उसका इस संसार में फिर आवागमन नहीं होता, वह संसार के बन्धनों से सदैव के लिए छूट जाता है।

सरसरी दृष्टि से देखने पर तो यह ज्ञात होता है कि सारे अवतरण में भाव-साम्य ही नहीं है। एक विचार है, वह समाप्त होने ही नहीं पाया और दूसरा विचार आ गया। विचार की गति अनेक स्थलों पर

टूट गई है। भावों का विकास अव्यवस्थित रूप से हुआ है, पर यदि रूपक के वातावरण से निकल कर—रूपक को एक-मात्र भावों के प्रकाशन का सहारा मान कर हम उस अवतरण के अन्तरंग अर्थ को देखें तो भाव-सौंदर्य हमें उसी समय ज्ञात हो जायगा। विचार की सजावट आँखों के सामने आ जायगी और हमें कवि का संदेश पढ़ते ही मिल जायगा।

रूपकों के अव्यवस्थित होने के कारण यह हो सकता है कि जिस समय कवि एकाग्र होकर दिव्य शक्ति का सौन्दर्य देखता है, संसार से बहुत ऊपर उठ कर देवलोक में विहार करता है, उसी समय वह उस आनंद और भाव उन्माद को नहीं सँभाल सकता। उस मस्ती से दीवाना होकर वह भिन्न-भिन्न रीतियों से अपने भावों का प्रदर्शन करता है। शब्द यदि उसे मिलते भी हैं तो उसके विह्वल आह्लाद से वे बिखर जाते हैं और कवि का शब्द-समूह बूढ़े मनुष्य के निर्बल अंगों के समान शिथिल पड़ जाता है। यही कारण है कि भाषा की बागडोर उसके हाथ से निकल जाती है और वह असहाय होकर बिखरे हुए शब्दों में, अनियंत्रित वाग्धाराओं में, टूटे-फूटे पदों में अपने उन्मत्त भावों का प्रकाशन करता है। यही कारण है कि उसके रूपक कभी उन्मत्त होते हैं, कभी शिथिल और कभी टूटे-फूटे। अब रूपक का आवरण हटा कर जरा इस पद का सौंदर्य देखिए:—

यदि काल-चक्र (चरखा) नष्ट भी हो जाय तो उसका निर्माणकर्ता अनंत शक्ति संपन्न ईश्वर कभी नष्ट नहीं हो सकता। यदि काल-चक्र न जले, न नष्ट हो, तो मैं सहस्रों कर्म कर सकता हूँ। हे गुरु, आप ईश्वर का परिचय पाकर उनसे मेरा संबंध करा दीजिए और जब तक ईश्वर न मिले तब तक आप ही मुझे अपने संरक्षण में रखिए। (जौ लौं अच्छा वर न मिले तौ लौं तुमहि बिहाय।) आप से प्रथम बार ही दीक्षित होने पर मुझे इस बात की चिन्ता होने लगी कि मैं किस प्रकार आपकी आज्ञा पालन करने में समर्थ हो सकूंगा। पर मुझे आश्चर्य हुआ कि आपके

प्रभाव से मेरी आत्मा अपने उत्पन्न करने वाले परम पिता ब्रह्म में जाकर सम्बद्ध हो गई। फल यह हुआ कि मेरे हृदय में ईश्वर की व्यापकता और भी बढ़ गई। समधी से समधी की भेंट हुई, आत्मा के पिता ब्रह्म से गुरु के पिता ब्रह्म की भेंट हुई, अर्थात् ईश्वर की अनुभूति दुगुनी हो गई। वाणी रूपी बहू के पास पांडित्य-रूपी भाई आया अर्थात् वाणी में विद्वत्ता और पांडित्य आ गया। उस समय कर्मकांडों से सज्जित काल-चक्र की दृढ़ता और भी स्पष्ट जान पड़ने लगी। सारे विश्व को एक नजर से देख लेने पर इतना अनुभव हो गया कि विश्व की सभी वस्तुएँ मर्त्य हो सकती हैं पर वह अनंत शक्ति जिसने काल-चक्र का निर्माण किया है कभी नष्ट नहीं हो सकती। उसने हृदय को सुचारु रूप से रखने के लिए इस काल-चक्र को और भी सुदृढ़ कर दिया। कबीर कहते हैं कि जिसने एक बार इस काल-चक्र के मर्म को समझ लिया वह कभी संसार के बन्धनों से बद्ध नहीं हो सकता। उसे ईश्वर की ऐसी अनुभूति हो जाती है कि उसके जन्म-मृत्यु का बन्धन नष्ट हो जाता है।

रूपक का बँधान कितना सुन्दर है! अब हमें यह स्पष्ट ज्ञात हो गया कि रूपक का सहारा लेकर रहस्यवादी किस प्रकार अपने भावों को प्रकट करते हैं। एक तो वे अपनी अनुभूति प्रकट नहीं कर सकते और जो कुछ वे कर सकते हैं ऐसे ही रूपकों के सहारे। डाक्टर फ्रायड का तो मत ही यही है कि आत्मा की भाषा रूपकों में ही प्रकट होती है।

और वे रूपक भी कैसे होते हैं! उनके सामने संसार की वस्तुएँ गुब्बारे की भाँति हैं जिससे अनंत शक्ति गैस भरी हुई है। यही गुब्बारे कवि की कल्पना के झोके से यहाँ वहाँ उड़ते फिरते हैं। कवि की कल्पना भी इस समय एक घड़ी के पेंडुलम का रूप धारण करती है। वह पृथ्वी और आकाश इन दो क्षेत्रों मे बारी-बारी से घूमा करती है। आज ईश्वर की अनंत विभूति है तो कल संसार की वस्तुओं में उस अनुभूति का प्रदर्शन है। सोमवार को कवि ने ईश्वर की अनंत शक्तियों में अपने को मिला दिया था तो मंगलवार को वह कवि संसार में आकर उस दिव्य

अनुभूति को लोगों के सामने बिखरा देता है।

कबीर के रूपकों के व्यवहार में एक बात और है। वह यह कि कबीर के रूपक स्वाभाविक होने पर भी जटिल हैं। यद्यपि उनके रूपक पुष्प की भाँति उत्पन्न होते हैं और उन्हीं की भाँति विकसित भी, पर उनमें दुरूहता के काँटे अवश्य होते हैं। शायद कबीर जटिल होना भी चाहते थे। यद्यपि वे लोगों के सामने अपने विचार प्रकट करना चाहते थे तथापि वे यह भी चाहते थे कि लोग उनके पदों को समझने की कोशिश करें। सोना खान के भीतर ही मिलता है, ऊपर नहीं। यदि सोना ऊपर ही बिखरा हुआ मिल जाय तो फिर उसका महत्त्व ही क्या रहा! उसी प्रकार कबीर के दिव्य वचन रूपकों के अन्दर छिपे रहते है। जो जिज्ञासु होगे वे स्वयं ही परिश्रम कर समझ लेगे अन्यथा मूर्खों के लिए ऐसे वचनों का उपयोग ही क्या हो सकता है! एक बार अंग्रेजी के रहस्यवादी कवि ब्लेक से भी एक महाशय ने प्रश्न किया कि उनके विचारों का स्पष्टीकरण करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता है। इस पर उन्होंने कहा, "जो वस्तु वास्तव में उत्कृष्ट है वह निर्बल व्यक्ति के लिए सदैव अगम्य होगी और जो वस्तु किसी मूर्ख को स्पष्ट की जा सकती है वह वास्तव में किसी काम की नहीं। प्राचीन समय के विद्वानों ने उसी ज्ञान को उपदेशयुक्त समझा था जो बिलकुल स्पष्ट नहीं था, क्योंकि ऐसा ज्ञान कार्य करने की शक्ति को उत्तेजित करता है। ऐसे विद्वानों में मैं मूसा, सालोमन, ईसप, होमर और प्लेटो का नाम ले सकता हूँ।"

इसी विचार के वशीभूत होकर कबीर ने शायद कहा था :—

कहै कबीर सुनो हो संतो, यह पद करो निबेरा।

अब हम रहस्यवाद की कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालना चाहते हैं। ये विशेषताएँ रहस्यवाद के विषय में अत्यधिक विवेचना कर यह बतला सकती हैं कि अमुक रहस्यवादी अपनी कल्पना के ज्ञान में कहाँ तक ऊँचा उठ सका है। इन्हीं विशेषताओं का स्पष्टीकरण हम इस प्रकार करेंगे।

आध्यात्मिक विवाह

आत्मा से परमात्मा का जो मिलाप होता है उसका मूल कारण प्रेम है। बिना प्रेम के आत्मा परमात्मा से न तो मिलने ही पाती है और न मिलने की इच्छा ही रख सकती है। उपासना से तो श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता है, आराध्य के प्रति भय और आदर होता है पर भक्ति या प्रेम से हृदय में केवल सम्मिलन की आकांक्षा उत्पन्न होती है। जब सूफ़ीमत में प्रेम का प्रधान महत्व है—रहस्यवाद में प्रेम का आदि स्थान है—जो आत्मा में परमात्मा से मिलने की इच्छा क्यों न उत्पन्न हो? प्रेम ही तो दोनों के मिलन का कारण है।

प्रेम का आदर्श किस परिस्थिति में पूर्ण होता है? माता-पुत्र, पिता-पुत्र, मित्र-मित्र के व्यवहार में नहीं। उसका एक कारण है। इन संबंधों में स्नेह की प्रधानता होती है। सरलता, दया, सहानुभूति ये सब स्नेह के स्तम्भ है। इससे हृदय की भावनाएँ एक शांत वातावरण ही में विकसित होती हैं। जीवों के प्रति साधु और संतों के कोमल हृदय का बिंब ही स्नेह का पूर्ण चित्र है। उससे इंद्रियाँ स्वस्थ होकर शांति और सरलता से पुष्ट होती है। प्रेम स्नेह से कुछ भिन्न है। प्रेम में एक प्रकार की मादकता होती है। उससे उत्तेजना आती है। इंद्रियाँ मतवाली होकर आराध्य को खोजने लगती हैं। शांति के बदले एक प्रकार की विह्वलता आ जाती है। हृदय में एक प्रकार की हलचल मच जाती है। संयोग में भी अशांति रहती है। मन में आकर्षण, मादकता अनुराग की प्रवृत्तियाँ और अंतर्प्रवृत्तियाँ एक बार ही जागृत हो जाती हैं। इस प्रकार के प्रेम की पूर्णता एक ही संबंध में है और वह संबंध है पति पत्नी का। रहस्यवाद या सूफ़ीमत में आत्मा और परमात्मा के प्रेम की पूर्णता ही प्रधान है; अतएव उसकी पूर्ति तभी हो सकती है जब आत्मा

और परमात्मा में पति-पत्नी का संबंध स्थापित हो जाय। कबीर ने लिखा ही है :—

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥

उस संबंध में प्रेम की महान शक्ति छिपी रहती है। इसी प्रेम के सहारे आत्मा में परमात्मा से मिलने की क्षमता आती है। इस प्रेम में न तो वासना का विस्तार ही रहता है और न सांसारिक सुखो की तृप्ति ही। इसमें तो सारी इंद्रियाँ आकर्षण, मादकता और अनुराग की प्रवृत्तियाँ और अंतर्प्रवृत्तियाँ लेकर स्वाभाविक रूप से परमात्मा की ओर वैसे ही अग्रसर होती है जैसे नीची जमीन पर पानी। अतएव ऐसे प्रेम की पूर्ति तभी हो सकती है जब आत्मा और परमात्मा में पति-पत्नी का संबंध स्थापित हो जाय। बिना यह संबंध स्थापित हुए पवित्र प्रेम में पूर्णता नहीं आ सकती। हृदय के स्पष्ट भावों की स्वतन्त्र व्यञ्जना हुए बिना प्रेम की अभिव्यक्ति ही नही हो सकती। एक प्राण में दूसरे प्राण के घुले जाने की बांछा हुए बिना प्रेम में पूर्णता नही आ सकती। एक भावना का दूसरी भावना मे निहित हुए बिना प्रेम में मादकता नही आती। अपनी आकाक्षाएं, आशाएं, इच्छाएँ, अभिलाषाएँ और सब कुछ आराध्य के चरणो में समर्पित कर देने की भावना आए बिना प्रेम में सहृदयता नहीं आती। प्रेम की सारी व्यञ्जनाएँ, और व्याख्याएँ एक पति-पत्नी के संबंध में ही निहित हैं। इसलिए प्रेम की इस स्वतन्त्र व्यञ्जना को प्रकाशिल करने के लिए बड़े-बड़े रहस्यवादियों ने—ऊँचे से ऊँचे सूफ़ियों ने आत्मा और परमात्मा को पति-पत्नी के संबंध में संसार के सामने रख दिया है। रहस्यवाद के इसी प्रेम में आत्मा स्त्री बनकर परमात्मा के लिए तड़पती है, सूफ़ीमत के इसी प्रेम में जीवात्मा पुरुष बन कर परमात्मा रूपी स्त्री के लिए तड़पता है। इसी प्रेम के संयोग में रहस्यवाद और सूफ़ीमत की पूर्णता है। प्रेम के इस संयोग ही को आध्यात्मिक विवाह कहते है।

कबीर ने भी अपने रहस्यवाद में आत्मा को स्त्री मान कर पुरुष-रूप परमात्मा के प्रति उत्कृष्ट प्रेम का निरूपण किया है। इस प्रेम के संयोग मे जब तक पूर्णता नहीं रहती तब तक आत्मा विरहणी बन कर परमात्मा के विरह में तड़पा करती है। इस विरह में वासना का चित्र होते हुए भी प्रेम की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति रहती है। वासना केवल प्रेम का स्थूल रूप है जो नेत्रो के सामने नग्न रूप में आ जाता है पर यदि उस वासना मे पवित्रता की सृष्टि हुई तो प्रेम का महत्त्व और भी बढ जाता है। रहस्यवाद की इस वासना मे सांसारिकता की बू नहीं उसमें आध्यात्मिकता की सुगंध है। इसलिए विरह की इस वासना का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। कबीर ने विरह का वर्णन जिस विदग्धता के साथ किया है उससे यही ज्ञात होता है कि कबीर की आत्मा ने स्वयं ऐसी विरहिणी का वेष रख लिया होगा जिसे बिना प्रियतम के दर्शन के एक क्षण भर भी शांति न मिलती होगी। जिस प्रकार विरहिणी के हृदय में एक कल्पना करुणा के सौ-सौ वेष बना कर आँसू बहाया करती है, उसी प्रकार कबीर के मन का एक भाव न जाने करुणा के कितने रूप रखकर प्रकट हुआ है। विरहिणी प्रतीक्षा करती है, प्रिय की बातें सोचती है, गुण-वर्णन करती है, विलाप करती है, आशा रख कर अपने मन को संतोष देती है, याचना करती है। कबीर की आत्मा ऐसी विरहिणी से कम नहीं है। वह परमात्मा की याद सौ प्रकार से करती है। उसके विरह मे तड़पती है, अपनी करुणा-जनक अवस्था पर स्वयं विचार करती है और हजारो आकांक्षाओ का भार लेकर, उत्सुकता और अभिलाषाओं का समूह लेकर, याचना की तीव्र भावना एक साथ ही प्राणों से निकाल कर कह उठती है :—

नैनां नीझर लाइया, रहट बसै निस जाम।
पपिहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कबरे मिलहुगे राम॥

कितनी करुण याचना है! करुणा में घुल कर भिक्षुक प्राणों का

कितना विह्वल स्पष्टीकरण है ! यह आत्मा का विरह है जिसमें वह रो रो कर कहती है :—

बाल्हा आव हमारे गेह रे,
तुम बिन दुखिया देह रे।
सबको कहैं तुम्हारी नारी मोको इहै अवेह रे,
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।
अंन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यूँ कामी को काम पियारा, ज्यूँ प्यासे को नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपकारी, हरि से कहै सुनाई रे,
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जिव जाइ रे।

इस शब्द में यह यद्यपि सासारिकता का वर्णन आ गया है किन्तु आध्यात्मिक विरह को ध्यान मे रख कर पढ़ने से सारा अर्थ स्पष्ट हो जाता है और आत्मा और परमात्मा के मिलन की आकांक्षा ज्ञात हो जाती है। ऐसे पदों में यही बात तो विचारणीय है कि सासारिकता को साथ लिए भी आत्मा का विरह कितने उत्कृष्ट रूप से निभाया जा सकता है। विरह की इस आंच से आत्मा पवित्र होती है और फिर परमात्मा से मिलने के योग्य बन सकती है। बस विरह से आत्मा का अस्तित्व और भी स्पष्ट होकर परमात्मा से मिलने के योग्य बन जाता है। अंडरहिल ने लिखा है।—

[१]"रहस्यवादी बार-बार हमें यही विश्वास दिलाते है कि इससे व्यक्तित्व खोता नही वरन् अधिक सत्य बनता है।"

शमसी तबरीज़ ने परमात्मा को पत्नी मान कर अपनी विरह-व्यथा इस प्रकार सुनाई है :—

---

[१]Over and over again they assure us that personality is not lost but made more real.

अंडरहिल रचित मिस्टिसिज्म, पृष्ठ ५०३

[1]इस पानी और मिट्टी के मकान में तेरे बिना यह हृदय खराब है। या तो मकान के अन्दर आ जा, ऐ मेरी जाँ, या इस मकान को छोड़ देता हूँ।

कबीर ने भी यही विचार इस प्रकार कहा है :—

कहैं कबीर हरि दरस दिखाओ।
हमहिं बुलावो कि तुम चल आओ॥

इस प्रकार इस विरह में जब आत्मा अपने विकारों को नष्ट कर लेती है, अपने आँसुओं से अपने सब दोषों को धो लेती है, अपनी आहों से अपने सारे दुर्गुणों को जला लेती है तब कहीं वह इस योग्य बनती है कि परमात्मा के द्वार पर पहुंच कर उसके दर्शन करे और अन्त में उनसे संबंध हो जाय।

परमात्मा से शराब-पानी की तरह मिलने के पहले आत्मा का जो परमात्मा से सामीप्य होता है उसे ही आध्यात्मिक भाषा में 'विवाह' कहते है। इस स्थिति में आत्मा अपनी सारी शक्तियों को परमात्मा में समर्पित कर देती है। आत्मा की सारी भावनाएँ परमात्मा की विभूतियों में लीन हो जाती हैं और आत्मा परमात्मा की आज्ञाकारिणी उसी प्रकार बन जाती है जिस प्रकार पत्नी पति की। अनेक दिनों की तपस्या के

در خانۂ آب و گل
لبے تشت خراب دان دل
یا جائہ در آ اے جلن
یا خانہ بپر دازم

[1]दर ख़ानाए आबो गिल
लबे तुस्त ख़राब दान दिल
या ख़ाना दर आ ए जाँ
या ख़ाना ब़िपर दाजम्
—दीवाने शमसी तबरीज

बाद, अनेकों कष्ट उठाने के बाद, आशाओं और इच्छाओं की वेदना भी सह लेने के बाद जब आत्मा को परमात्मा की अनुभूति होने लगती है तो वह उमंग में कह उठती है :—

बहुत दिनन थें मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घर बैठे आये।
मंगलचार माँहि मन राखौं,
राम रसाँइण रसना चाषौं।
मंदिर माँहि भया उजियारा,
मैं सूती अपना पीव पियारा।
मैं 'र निरासी जे निधि पाई,
हमहि कहा यहु तुमहि बड़ाई।
कहै कबीर, मैं कछू न कीन्हा,
सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा।

ऐसी अवस्था में आत्मा आनंद से पूर्ण होकर ईश्वर का गान गाने लगती है। उसे परमात्मा की उत्कृष्टता ज्ञात हो जाती है, अपनी उत्सुकता की थाह मिल जाती है। उस उत्सुकता मे उसका सारा जीवन एक चक्र की भाँति घूमता रहता है। आत्मा अपने आनंद में विभोर होकर परमात्मा की दिव्य शक्तियो का तीव्र अनुभव करने लगती है उसकी उस दशा में आनंद और उल्लास की एक मतवाली धारा बहने लगती है। उसके जीवन में उत्साह और हर्ष के सिवाय कुछ नहीं रह जाता। माधुर्य में ही उसकी सारी प्रवृत्तियाँ वेगवती वारि-धारा के समान प्रवाहित हो जाती है, माधुर्य में ही उसके जीवन का तत्त्व मिल जाता है माधुर्य ही में वह अपने अस्तित्व को खो देती है।

यही आध्यात्मिक विवाह का उल्लास है।

आनंद

जब आत्मा परमात्मा की विभूतियों का अनुभव करने को अग्रसर होती है तो उसमें कितनी उत्सुकता और कितनी उमंग रहती है ! उस उत्सुकता और उमंग में उसकी सारी भावनाएँ जाग उठती हैं और वे ईश्वरीय अनुभूति के लिए व्यग्र हो जाती हैं, जब आत्मा अपने विकास के पथ पर परमात्मा की दिव्य शक्तियो को देखती है तो उसे एक प्रकार के अलौकिक आनंद का प्रवाह संसार से विमुख कर देती है। इसीलिए तो परमात्मा की दिव्य शक्तियों को पहिचानने वाले रहस्यवादी संसार के बाह्य चित्र को उपेक्षा की दृष्टि से देखते है :—

रे यामें क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहि कहत घर मेरा।

(कबीर)

वे जब एक बार परमात्मा के अलौकिक सौंदर्य को अपनी दिव्य आँखो से देख लेते है तब उनके हृदय में संसार के लिये कोई आकर्षण नही रह जाता। संसार की सुन्दर मे सुन्दर वस्तु उन्हे मोहित नहीं कर सकती। वे उसे माया का जंजाल समझते है। आत्मा को मोह मे भुलाने का इंद्रधनुष जानते हे और ईश्वर से दूर हटाने का कुत्सित और कलुषित मार्ग। दूसरी बात यह भी है कि परमात्मा की विभूतियाँ उनको अपने सौंदर्य-पाश मे इस प्रकार बाँध लेती हैं कि फिर उन्हे किसी दूसरी ओर देखने का अवसर ही नहीं मिलता अथवा वे दूसरी ओर देखना ही नही चाहते। उनके हृदय में आनंद की वह रागिनी बजती है जिसके सामने संसार के आकर्षक से आकर्षक स्वर नीरस जान पड़ने लगते है। वे ईश्वरीय अनुभूति के लिए तो सजीव हो जाते हैं पर संसार के लिए निर्जीव। वे ईश्वर के ध्यान मे इतने मस्त हो जाते है कि फिर

उन्हें संसार का ध्यान कभी अपनी ओर खींचता ही नहीं। वे ईश्वर का अस्तित्व ही खोजते हैं—अपने शरीर में बाह्य संसार में नहीं क्योंकि उससे तो वे विरक्त हो चुके है। यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखना आवश्यक है। यद्यपि यह ईश्वर की अनुरक्ति आत्मा को परमात्मा के बहुत निकट ला देती है पर आत्मा की संकुचित सीमा में परमात्मा का व्यापक रूप स्पष्ट न दीख पड़ने की भी तो संभावना है। बाह्य संसार में ईश्वर की जितनी विभूतियाँ जितनी स्पष्टता के साथ प्रकट हैं उतनी स्पष्टता के साथ, संभव है, आत्मा के प्रकट न हो सकें। विशेषकर ऐसी स्थिति में जब कि आत्मा अभी परमात्मा के मिलन-पथ पर ही है—पूर्ण विकसित नहीं हुई है। ऐसी स्थिति में आत्मा परमात्मा का उतना ही रूप ग्रहण कर सकती है जितना कि उसकी परिधि में आ सकती है। परमात्मा के गुणों का ग्रहण ऐसी अवस्था में कम और अधिक से अधिक भी हो सकता है। यह आत्मा के विकसित और अविकसित रूप पर निर्भर है। इसलिए यह आवश्यक है कि परमात्मा के ध्यानोल्लास में मग्न आत्मा संसार का बहिष्कार केवल इसलिए न करे कि संसार में भी परमात्मा की शक्तियों का प्रकाशन है। संसार का सौंदर्य अनंत को देखने के लिये एक साधन-मात्र है। फ़ारसी के एक कवि ने लिखा है:—

हुस्न ख़ूबाँ बहरे हकबीनी मिसाले ऐनकस्त,
मी देहद बीनाई अन्दर दीदए नज़्ज़ारे मन।

कबीर ने बाह्य संसार से तो आँखें बन्द कर ली हैं :—

तिल तिल कर यह माया जोरी,
चलत बेर तिणां ज्यूँ तोरी।
कहै कबीर तू ता कर दास,
माया माँहे रहै उदास॥

दूसरे स्थान पर वे कहते हैं :—

किसको ममां चचा पुनि किसका,
किसका पंगुड़ा जोई।

यहु संसार बंजार मंढ़्या है,
जानेगा जन कोई ॥
मैं परदेशी काहि पुकारौं,
यहाँ नहीं को मेरा ।
यहु संसार ढूँढ़ि जब देखा,
एक भरोसा तोरा ।

इस प्रकार कबीर केवल परमात्मा की एकांत विभूतियों में रमना चाहते हैं। उन्हें परमात्मा ही में आनंद आता है, संसार में प्रदर्शित ईश्वर के रूपों में नहीं।

परमात्मा के लिए आकांक्षा में एक प्रकार का अलौकिक आनंद है जिसमें प्रत्येक रहस्यवादी लीन रहता है। यह आनंद दो प्रकार से हो सकता है। शारीरिक आनंद, और आध्यात्मिक आनंद। शारीरिक आनंद में शरीर की सारी शक्तियाँ ईश्वर की अनुभूति में प्रसन्न होती हैं, आनंद और उल्लास में लीन हो जाती है। आध्यात्मिक आनंद में शरीर की सारी शक्तियाँ लुप्त भी होने लगती हैं। शरीर मृतप्राय सा हो जाता है। चेतना शून्य होने लगती है, केवल हृदय की भावनाएँ अनंत शक्ति के आनंद में ओत-प्रोत हो जाती है। अंडरहिल ने अपनी पुस्तक 'मिस्टिसिजम' में इस आनंद की तीन स्थितियाँ मानी है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। परंतु मैं मानसिक स्थिति को शारीरिक स्थिति में ही मानता हूँ। उसका प्रधान कारण तो यही है कि बिना मानसिक आनंद के शारीरिक आनंद हो ही नहीं सकता। जब तक मन में ईश्वर की अनुभूति का आनंद न आयेगा तब तक शरीर पर उस आनंद के लक्षण क्या प्रकट हो सकें ! दूसरा कारण यह है कि आत्मा की जो दशा मानसिक आनंद में होगी वही शारीरिक आनंद में भी। ऐसी स्थिति में जब दोनों का रूप और प्रभाव एक ही है तो उन्हें भिन्न मानना युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता। अब हम दोनों स्थितियों पर स्वतंत्र रूप से प्रकाश डालेंगे।

पहले उस आनंद का रूप शारीरिक स्थिति में देखिए। जब आत्मा ने एक बार परमात्मा की अलौकिक शक्तियों से परिचय पा लिया तब उस परिचय की स्मृति में हृदय की सारी भावनाएँ आनंद में परिप्रोत हो जाती हैं। उनका असर प्रत्येक इंद्रिय पर पड़ने लगता है उस समय रहस्यवादी अपने अंगो में एक प्रकार का अनोखा बल अनुभव करने लगता है। उसके प्रत्येक अवयव आनद से चंचल हो उठते हैं। अंग प्रत्यंग थिरकने लगता है। उसकी विविध इंद्रियाँ आनंद से नाच उठती हैं! कबीर ने इसी शारीरिक आनंद का कितना सुदर वर्णन किया :—

हरि के बारे बड़े पकाये, जिनि जारे तिन पाये।

ग्यांन अचेत फिरैं नर लोई,
तार्थैं जनमि जनमि डहकाये।
धौल मंदलिया बैल रबाबी,
कऊआ ताल बजावै,
पहिर चोलनां गादह नाचै,
भैंसा निरति करावै।
स्यंघ बैठा पॉन कतरै,
घूंस गिलोरा लावै,
उदरी बपुरी मङ्गल गावै,
कछू एक आनंद सुनावै।
कहै कबीर सुनो रे संतो,
गडरी परबत खावा,
चकवा बैठि अँगारै निगलै,
समंद आकासाँ धावा।

कबीर भिन्न-भिन्न इंद्रियो के उल्लास का निरूपण भिन्न-भिन्न जानवरों के कार्य-व्यापारो में ही कर सके। ज्ञानेन्द्रियों अथवा कर्मेन्द्रियों का विलक्षण उल्लास संसार के रूपक में वर्णन किया जा सकता था? शारीरिक आनंद की विचित्रता के लिए "स्यंघ बैठा पान कतरै, घूंस गिलौरा

लावै" के अतिरिक्त और कहा ही क्या जा सकता था ! रहस्यवादी उस विलक्षणता को किस प्रकार प्रकट करता ! सीधे-सादे शब्दों में अथवा वर्णनों में उस विलक्षणता का प्रकाशन ही किस प्रकार हो सकता था ? इंद्रियों के उस उल्लास को कबीर के इस पद मे स्पष्ट प्रकाशन मिल गया है। यही शारीरिक आनन्द का उदाहरण है।

अंडरहिल ने लिखा है कि शारीरिक उल्लास में एक मूर्छा सी आ जाती है। हाथ पैर ठंडे और निर्जीव हो जाते है। किसी बात के ध्यान मे आने से अथवा किसी वस्तु को देखने से परमात्मा की याद आ जाती है। और वह याद इतनी मतवाली होती है कि रहस्यवादी को उसी समय मूर्छा आ जाती है। वह मूर्छा चाहे थोड़ी देर के लिए हो अथवा अधिक देर के लिए। मेरे विचार मे मूर्छा का संबंध हृदय मे है शरीर मे नही। यदि हृदय स्वाभाविक गति में रहे और शरीर को मूर्छा आ जाय अथवा शरीर के अंग कार्य न कर सके, वे शून्य पड़ जायँ तो वह शारीरिक स्थिति कही जा सकती है। जहाँ आत्मा मूर्छित हुई, उसके साथ ही साथ स्वभावतः शरीर भी मूर्छित हो जायगा। शरीर तो आत्मा से परिचालित है, स्वतन्त्र रूप से नही। जहाँ तक हृदय की मूर्छा मे सम्बन्ध है, मैं उसे आध्यात्मिक स्थिति ही मान सकूंगा, शारीरिक नही। शारीरिक उल्लास के विवेचन में अंडरहिल ने एक उदाहरण भी दिया है।

जिनेवा की कैथराइन जब मूर्छितावस्था मे उठी तो उसका मुख गुलाबी था, प्रफुल्लित था और ऐसा मालूम हुआ मानो उसने कहा "ईश्वर के प्रेम से मुझे कौन दूर कर सकता है ?"[१]

---

[1]And when she came forth from her hiding place her face was rosy as it might be a cherib's and it seemed as if she might have said, "who shal separate me from the

यदि शारीरिक उल्लास में हाथ-पैरों में रक्त का संचालन मन्द पड़ जाता है, शरीर ठंडा और दृढ़ हो जाता है तो कैथराइन का गुलाबी मुख शारीरिक उल्लास का परिचायक नहीं था।

आध्यात्मिक आनंद में आत्मा इस संसार के जीवन में एक अलौकिक जीवन की सृष्टि कर लेती है। इस स्थिति में आत्मा केवल एक ही वस्तु पर केन्द्रीभूत हो जाती है। और वह वस्तु होती है परमात्मा की प्रेम विभूति।

राम रस पाइयारे तातें बिसरि गये रस और।

(कबीर)

उस समय बाह्येंद्रियों से आत्मा का संबंध नही रह जाता। आत्मा स्वतंत्र होकर अपने प्रेममय दिव्य जीवन की सृष्टि कर लेती है। ऐसी स्थिति मे आत्मा भावोन्माद में शरीर के साथ मूर्छित भी हो सकती है। उस समय न तो आत्मा ही संसार की कोई ध्वनि ग्रहण कर सकती है और न शरीर ही किसी कार्य का संपादन कर सकता है। आत्मा और शरीर की यह सम्मिलित मूर्छा रहस्यवादी उत्कृष्ट सफलता है।

आत्मा की उस मूर्छा में पहले या बाद ईश्वरीय प्रेम का स्रोत आत्मा से इतने वेग से उमड़ता है कि उसके सामने संसार की कोई भी भावना नही ठहर सकती। उस समय आत्मा में ईश्वर का चित्र अन्तर्हित रहता है। उस अलौकिक प्रेम के प्रवाह में इतनी शक्ति होती है कि वह आत्मा के सामने अव्यक्त अलौकिक सत्ता का एक चित्र-सा खींच देती है। आत्मा में अंतर्हित ईश्वरीय सत्ता स्पष्ट रूप से आत्मा के सामने आ जाती है। उस भावोन्माद में इतना बल होता है कि आत्मा स्वयं अपने में से ईश्वर को निकाल कर उसकी आराधना मे लीन हो जाती है। कबीर इसी अवस्था को इस प्रकार लिखते है :—

---

love of God ?"

अंडरहिल रचित मिस्टिसिज़म, पृष्ठ ४३२

जलि जाई थलि उपजी
आई नगर में आप,
एक अचंभा देखिए
बिटिया जायो बाप ।

प्रेम की चरम सीमा में, आध्यात्मिक आनंद के प्रवाह में आत्मा जो परमात्मा से उत्पन्न है अपने में अंतर्हित परमात्मा का चित्र खींच लेती है मानो 'बिटिया' अपने बाप को उत्पन्न कर देती है । यही उस आध्यात्मिक आनंद के प्रवाह की उत्कृष्ट सीमा है । आत्मा उस समय अपना व्यक्तित्व ही दूसरा बना लेती है । आध्यात्मिक आनंद के तूफान में आत्मा उड़ कर अनंत सत्य की गोद में जा गिरती है, जहाँ प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है ।

गुरु

गुरु प्रसाद अकल भई तोको नहिं तर था बेगाना ।

(कबीर)

रामानंद के पैरों से ठोकर खाकर उषा-बेला में कबीर ने जो गुरु मंत्र सीखा था उसमें गुरु के प्रति कितनी श्रद्धा और भक्ति थी ! राम-मंत्र के साथ-साथ गुरु का स्थान कबीर के हृदय में बहुत ऊँचा था उनके विचारानुसार गुरु तो ईश्वर से भी बड़ा है। बिना उसकी सहायता के आत्मा की अशुद्धि मे परमात्मा की प्राप्ति भी नही हो सकती। अतएव जो व्यक्ति परमात्मा के मिलन आवश्यक रूप से वर्तमान है, जो शक्ति अनंत-संयोग के लिए नितात आवश्यक है, उस शक्ति का कितना मूल्य है, यह शब्दो में कैसे बतलाया जा सकता है ? गुरु की कृपा ही आत्मा को परमात्मा से मिलने के रास्ते पर ले जाती है। अतएव गुरु जो आध्यात्मिक जीवन का पथ-प्रदर्शक है, ईश्वर से भी अधिक आदरणीय है। इसीलिए तो कबीर के हृदय मे शंका हो जाती है कि यदि गुरु और गोविंद दोनो खड़े हुए है तो पहले किसके चरण स्पर्श किए जायँ ? अन्त में गुरु ही के चरण छुए जाते है जिन्होने स्वयं गोविंद को बतला दिया है।

कबीर ने तो सदैव गुरु के महत्त्व को तीव्र से तीव्र शब्दों मे घोषित किया है। बिना गुरु के यदि कोई चाहे कि वह ईश्वर का ज्ञान प्राप्त कर ले तो वह कठिन ही नहीं वरन् असंभव है। "गुरु बिन चेला ज्ञान न चहै" का सिद्धांत तो सदैव उनकी आँखो के सामने था। ऐसा गुरु जो परमात्मा का ज्ञान कराता है, कबीर के मतानुसार आध्यात्मिक जीवन के लिये परमावश्यक है।

कबीर के विचारों में गुरु आत्मा और परमात्मा मे मध्यस्थ है।

वही दोनों का संयोग कराता है। संयोगावस्था मे चाहे गुरु की आवश्यकता न हो पर जब तक आत्मा और परमात्मा में संयोग नहीं हो जाता तब तक गुरु का सदैव साथ होना चाहिये, नही तो आत्मा न जाने रास्ता भूल कर कहाँ चली जाय !

कबीर ने अपने रेखतों में गुरु की प्रशंसा जी खोल कर की है :—

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै
  गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं,
गुरुदेव बिन जीव का तिमर नासै नहीं
  समुझि विचार ले सनै माँहीं।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये
  जनम अनेक की अटक खोलै,
कहै कब्बीर गुरुदेव पूरन मिलै
  जीव और सीव तब एक तोलै ॥
करौ सतसंग गुरुदेव से चरन गहि
  जासु के दरस तें भर्म भागै,
सील औ साँच संतोष आवै दया
  काल की चोट फिर नाहि लागै।
काल के जाल में सकल जिव बंधिया
  बिन ज्ञान गुरुदेव घट अंधियारा,
कहै कब्बीर जन जनम आवै नहीं
  पारस परस पद होय न्यारा ॥
गुरुदेव के भेव को जीव जाने नहीं
  जीव तो आपनी बुद्धि ठानै,
गुरुदेव तो जीव को काढ़ि भव-सिंध ते
  फेरि लै सुक्ख के सिंध आनै।
बंद करि दृष्टि को फेरि अंदर करै
  घट का पाट गुरुदेव खोलै,

कहत कब्बीर तू देख संसार में
गुरुदेव समान कोई नाँहि तोलै ॥

सभी रहस्यवादियों ने आत्मा की प्रारंभिक यात्रा में गुरु की आवश्यकता मानी है। जलालुद्दीन रूमी ने अपनी मसनवी के भाग १ में पीर (गुरु) की प्रशंसा लिखी है :—

ओ सत्य के वैभव, हुसामुद्दीन, कागज़ के कुछ पन्ने और ले और पीर के वर्णन में उन्हें कविता से जोड़ दे।

यद्यपि तेरे निर्बल शरीर में कुछ शक्ति नहीं है तथापि (तेरी शक्ति के) सूर्य बिना हमारे पास प्रकाश नहीं है।

पीर (पथ-प्रदर्शक) ग्रीष्म (के समान) है, और (अन्य) व्यक्ति शरत्काल (के समान) है। (अन्य) व्यक्ति रात्रि के समान हैं, और पीर चन्द्रमा है।

मैंने (अपनी) छोटी निधि (हुसामुद्दीन) को पीर (वृद्ध) का नाम दिया है। क्योंकि वह सत्य से वृद्ध (बनाया गया) है। समय से वृद्ध नहीं (बनाया गया)।

वह इतना वृद्ध है कि उसका आदि नहीं है; ऐसे अनोखे मोती का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है।

वस्तुत: पुरानी शराब अधिक शक्तिशालिनी है निस्संदेह पुराना सोना अधिक मूल्यवान है।

पीर चुनो, क्योंकि बिना पीर के यह यात्रा बहुत ही कष्ट-मय, भयानक और विपत्ति-मय है।

बिना साथी के तुम सड़क पर भी उद्भ्रान्त हो जाओगे जिस पर तुम अनेक बार चल चुके हो।

जिस रास्ते को तुमने बिलकुल भी नहीं देखा उस पर अकेले मत चलो, अपने पथ-प्रदर्शक के पास से अपना सिर मत हटाओ।

मूर्ख, यदि उसकी छाया (रक्षा) तेरे ऊपर हो तो शैतान की कर्कश ध्वनि तेरे सिर को चक्कर में डाल कर तुझे (यहाँ-वहाँ) घुमाती

रहेगी। शैतान तुझे रास्ते से बहका ले जायगा (और) तुझे 'नाश' मे डाल देगा; इस रास्ते में तुझ से भी चालाक हो गए है (जो बुरी तरह से नष्ट किये गए है)।

सुन (सीख) कुरान से—यात्रियो का विनाश ! नीच इबलिस ने उनसे क्या व्यवहार किया है !!

वह उन्हें रात्रि में अलग, बहुत दूर, ले गया—सैकड़ों हजारो वर्षो की यात्रा मे—उन्हे दुराचारी ने (अच्छे कार्यों से रहित) नग्न कर दिया।

उनकी हड्डियाँ देख—उनके बाल देख ! शिक्षा ले, और उनकी ओर अपने गधे (इंद्रियो) को मत हाँक। अपने गधे की गर्दन पकड़ और उसे रास्ते की तरफ उनकी ओर ले जा जो रास्ते को जानते है और उस पर अधिकार रखते है।

खबरदार ! अपना गधा मत जाने दे, और अपने हाथ उस पर से मत हटा, क्योकि उसका प्रेम उस स्थान से है जहाँ हरी पत्तियाँ बहुत होती है।

यदि तू एक क्षण के लिए भी असावधानी से उसे छोड़ दे तो वह उस हरे मैदान की दिशा में अनेक मील चला जायगा। गधा रास्ते का शत्रु है, (वह) भोजन के प्रेम में पागल-सा है। ओः, बहुत से है जिनका उसने सर्वनाश किया है !

यदि तू रास्ता नहीं जानता, तो जो कुछ गधा चाहता है, उसके विरुद्ध कर। वह अवश्य ही सच्चा रास्ता होगा।

(पैगम्बर ने कहा), उन (स्त्रियों) की संमति ले, और फिर (जो सलाह वे देती है) उसके विरुद्ध कर। जो उनकी अवज्ञा नही करता, वह नष्ट हो जायगा।

(शारीरिक) वासनाओं और इच्छाओं का मित्र मत बन—क्योंकि वे ईश्वर के रास्ते से अलग ले जाती हैं।

× × ×

कबीर ने भी गुरु को सदैव अपना पथ-प्रदर्शक माना है। उन्होंने लिखा है :—

पासा पकड़्या प्रेम का,
सारी मिया सरीर,
सतगुरु दाँव बताइया,
खेलै दास कबीर।

मध्वाचार्य के द्वैतवाद में जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा के बीच में 'वायु' का विशिष्ट स्थान है उसी प्रकार कबीर के ईश्वरवाद मे गुरु का। कबीर ने जिस गुरु को ईश्वर का प्रतिनिधि माना है उसका परिचय क्या है ?

(क) ज्ञान उसका शब्द हो। लौकिक और व्यावहारिक ही नहीं, वरन् आध्यात्मिक भी। उसमे यह शक्ति हो कि वह पतित से पतित आत्मा में ज्ञान का संचार कर उसे सत्पथ की ओर अग्रसर करा दे। उसके हृदय में ज्ञान का प्रवाह इतना अधिक हो कि शिष्य उसमें बह जाय। उसके ज्ञान से आत्मा के हृदय का अंधकार दूर हो जाय और वह अपने चारों ओर की वस्तुएँ स्पष्ट रूप मे देख ले। उसे मालूम हो जाय कि वह किस ओर जा रहा है—पाप और पुण्य किसे कहते है, उन्नति और अवनति का क्या तात्पर्य है। लौकिक में क्या अंतर है। आत्मा को प्रकाशित करने के क्या साधन है।

पीछे लागा जाइ था,
लोक बेद के साथ।
आगे थैं सतगुरु मिल्या,
दीपक दिया हाथ॥

... ...

माया दीपक नर पतँग,
भ्रमि भ्रमि इवैं पड़ंत।

कहै कबीर गुरु ज्ञान थैं,
एक आध उबर्रंत ॥

(ख) पथ-प्रदर्शन कार्य हो। आध्यात्मिक ज्ञान के पथ पर जहाँ पग पग पर आत्मा को ठोकरें खानी पड़ती हो, जहाँ आत्मा रास्ता भूल जाती है, वहाँ सहारा देकर निर्दिष्ट मार्ग बतलाना तो गुरु ही का काम है। माया मोह की मृग-तृष्णा में, स्त्री के सुकुमार शरीर की लालसा में; कपट और छल की क्षणिक आनंद-लिप्सा में आत्मा जब कभी निर्बल हो जाय तो उसमें ज्ञान का तेज डाल कर गुरु उसे पुनः उत्साहित करे। शिष्य के सामने वह स्पष्ट दिखला दे कि उसमें वह ऐसा तेज भर

काया कमंडल भरि लाया,
उज्ज्वल निर्मल नीर,
तन मन जोबन भरि पिया,
प्यास न मिटी सरीर।

दे जिससे केवल उसके हृदय में ही प्रकाश न हो वरन् चारो ओर उसके पथ पर भी प्रकाश की छटा जगमगा जाय। शिष्य में संसार की माया की अनुरक्ति न हो,

कबीर माया मोहनी,
सब जग घाल्या धाणि,
सतगुरु की किरपा भई,
नहीं तो करती भाँड़।

वह झूठा वेष न रखे,

वैसनों भया तो का भया,
बूझा नहीं बिबेक,
छापा तिलक बनाइ करि,
दगधा लोक अनेक।

वह कुसंगति में न पड़े,

निरमल बूंद आकाश की
पड़ि गई भोंमि विकार,

वह निंदा न करे,

दोष पराये देख कर,
चला हसंत हसंत,
अपने च्येत न आवई,
जिनकी आदि न अंत।

यदि ऐसे दोष शिष्य मे कभी आ भी जायँ तो गुरु में ऐसी शक्ति है कि वह शिष्य को उचित मार्ग का निर्देश कर दे।

इसी कारण गुरु का महत्त्व ईश्वर के महत्त्व से भी कही बढ़कर है। घेरण्ड संहिता के तृतीयोपदेश मे गुरु के संबंध मे कुछ श्लोक दिये गये है। वे बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनका अर्थ यही है कि केवल वही ज्ञान उपयोगी और शक्ति-संपन्न है जो गुरु ने अपने ओठों से दिया है; नही तो वह ज्ञान निरर्थक, अशक्त और दुःखदायक हो जाता है। 'इसमे कुछ भी संदेह नही कि गुरु पिता है, गुरु माता है और यहाँ तक कि गुरु ईश्वर भी है। इसी कारण उसकी सेवा मनसा वाचा कर्मणा होनी चाहिए। गुरु की कृपा से सभी शुभ वस्तुओ की प्राप्ति होती है। इसीलिए गुरु की सेवा नित्य ही होनी चाहिए, नही तो कोई कार्य मंगल-मय नहीं हो सकता।'[1]

ऐसे गुरु की ईश्वरानुभूति महान् शक्ति है। वह अपने शिष्य को उन 'शब्दों' का उपदेश दे, जिनसे वह परमात्मा के देवी वातावरण में साँस

---

[1]भवेद्वीर्यवती विद्या गुरु वक्त्र समुद्भवा
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यति दुःखदा—
[घेरंड संहिता तृतीयोपदेश, श्लोक १० ॥
गुरु पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो न संशयः
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्सर्वैः प्रसेव्यते ॥ ” श्लोक १३ ॥
गुरुप्रसादतः सर्वंलभ्यते शुभमात्मनः
तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्यमन्यथा न शुभं भवेत् ॥ ” श्लोक १४ ॥

ले सके। उसके उपदेश बाण के समान आकर शिष्य के मोहजाल को नष्ट कर दे और शिष्य अपनी अज्ञानता का अनुभव कर ईश्वर से मिलने की ओर अग्रसर हो। ईश्वर की अनुभूति प्राप्त कर जब गुरु शिष्य को ईश्वर के दिव्य प्रकाश से परिचित करा देता है, वह गुरु का कार्य समाप्त हो जाता है और आत्मा स्वयं परमात्मा की ओर बढ़ जाती है जहाँ किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती। गुरु से प्रोत्साहित होकर, गुरु से शक्तियाँ लेकर, आत्मा अपने को परमात्मा में मिला देती है, जहाँ वह आनंद संयोग में लीन हो जाती है। ऐसी अवस्था में भी गुरु उस आत्मा पर प्रकाश डालता रहता है जिस प्रकार नक्षत्र उषा की उज्जवल प्रकाश-रश्मियो के आने पर भी अपना झिलमिल प्रकाश फेंकते रहते है।

हठयोग

कबीर के 'शब्दों' हठयोग के भी कुछ सिद्धान्त मिलते है। यद्यपि उन सिद्धान्तों का स्पष्ट रूप कबीर की कविता में प्रस्फुटित नही हुआ तथापि उनका बाह्य रूप किसी न किसी ढंग से अवश्य प्रकट हो गया है। कबीर अपढ़ थे। अतएव उन्होंने हठयोग अथवा राजयोग के ग्रंथों को तो छुआ भी न होगा। योग का जो कुछ ज्ञान उन्हें सत्संग और रामानन्द आदि से प्रसाद स्वरूप मिल गया होगा, उसी का प्रकाशन उन्होंने अपने बेढंगे पर सच्चे चित्रों में किया है। कबीर अपने समय के महात्मा थे। उनके पास अनेक प्रकार के मनुष्यों की भीड अवश्य लगी रहती होगी। ईश्वर, धर्म और वैराग्य के वातावरण में उनका योग के बाह्य रूप से परिचित होना असंभव नही था।

योग का शाब्दिक अर्थ जोड़ना (युज् धातु) है। आत्मा जिस शारीरिक या मानसिक साधन से परमात्मा में जुड़ जावे, वही योग है। माया के प्रभाव से रहित होकर जब आत्मा सत्य का अनुभव कर समाधिस्थ हो परमात्मा के रूप में निमग्न हो जाती है उसी समय योग सफल माना जाता है।

योग के अनेक प्रकार हैं :—

१ ज्ञानयोग

२ राजयोग

३ हठयोग

४ मंत्रयोग

५ कर्मयोग, आदि

आत्मा अनेक प्रकार से परमात्मा में संबद्ध हो सकती है। ज्ञान के विकास से जब आत्मा विवेक और वैराग्य में अपने अस्तित्व को भूल

जाती है और अस्तित्व के कण में परमात्मा का अविनाशी रूप देखती है तब मुक्ति में दोनों का अविदित संमिलन हो जाता है (ज्ञानयोग)। आत्मा कार्यों का परिणाम सोचे बिना निष्काम भाव से कार्य कर परमात्मा में लीन हो जाती है (कर्मयोग)। आत्मा परमात्मा के नाम अथवा उससे संबंध रखने वाली किसी पंक्ति का उच्चारण करते-करते, किसी कार्य-विशेष को करते हुए, ध्यान में मग्न हो उससे मिल जाती है (मंत्रयोग)। अपने अंगो और श्वास पर अधिकार प्राप्त कर उनका उचित संचालन करते हुए (हठयोग) एवं मन को एकाग्र कर परमात्मा के दिव्य स्वरूप पर मनन करते हुए समाधिस्थ हो ईश्वर से मिल जाती है (राजयोग)। इस भाँति अनेक प्रकार से आत्मा परमात्मा में संबद्ध हो सकती है! हठयोग और राजयोग वस्तुतः एक ही भाग के दो अंग है। हृदय को संयत करने के पहले (राजयोग) अंगों को संगत करना आवश्यक है (हठयोग)। बिना हठयोग के राजयोग नहीं हो सकता। अतएव हठयोग राजयोग की पहली सीढ़ी है—हठयोग और राजयोग दोनों मिल कर एक विशिष्ट योग की पूर्ति करते है। कबीर के संबंध में हमें यहाँ विशेषतः हठयोग पर विचार करना है क्योकि कबीर के शब्दों में हठयोग ही का रूप मिलता है।

हठयोग का सारभूत तत्त्व तो बलपूर्वक ईश्वर से मिलना है। उसमें शारीरिक और मानसिक परिश्रम की आवश्यकता विशेष रूप से पड़ती है। शरीर को अधिकार में लाने के लिए कुछ आसनों का अभ्यास करना पड़ता है—खासकर श्वास का आवागमन संचालित करना पड़ता है। और मन को रोकने के लिए ध्यानादि की आवश्यकता पड़ती है। [1]योग-सूत्र के निर्माता पतंजलि ने (ईसा की दूसरी शताब्दी पहले) योग साधन के लिए आठ अंग माने है। वे क्रमशः इस प्रकार हैं :—

---

१ यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावंगानि

[पतंजलि योगदर्शन २—साधनपाद, सूत्र २९

१ यम

२ नियम

३ आसन

४ प्राणायाम

५ प्रत्याहार

६ धारणा

७ ध्यान और

८ समाधि

यम और नियम में आचार को परिष्कृत करने की आवश्यकता पड़ती है। यम में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह होना चाहिए। [१]नियम में पवित्रता, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान की प्रधानता है।[२] आसन में[३] ईश्वरीय चिंतन के लिए शरीर की भिन्न-भिन्न स्थितियों का विचार है। शरीर की ऐसी दशा हो जिसमें वह स्थिर होकर हृदय को ईश्वरीय चिंतन के लिए उत्साहित करे। आसन पर अधिकार हो जाने पर योगी शीत और ताप से प्रभावित नहीं होता।[४] शिवसंहिता के अनुसार ८४ आसन हैं।[५] उनमें से चार मुख्य हैं— सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन और स्वस्तिकासन। प्रत्येक आसन से शरीर का कोई न कोई भाग शक्तियुक्त बनता है। शरीर रोग-रहित हो

---

[१]तत्राहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहायनमाः

[पतंजलि योग-सूत्र २—साधनपाद; सूत्र ३०

[२]शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि

नियमः [,, ,, ,, सूत्र ३२

[३]स्थिर सुखमासनम् [,, ,, ,, सूत्र ४६

[४]ततो द्वन्द्वानभिघातः [,, ,, ,, सूत्र ४८

[५]चतुरशीत्यासनानि संति नाना विधानि च

[शिवसंहिता, तृतीय पटल, श्लोक ८४

जाता है।

प्राणायाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्राणायाम से तात्पर्य यही है कि वायु-स्नायु या (Vagus Nerve) स्नायु-केन्द्रों पर इस प्रकार अधिकार प्राप्त कर लिया कि श्वासोच्छवास की गति नियमित और नाद-युक्त (rhythmic) हो जाय। आसन के सिद्ध हो जाने पर ही श्वास और प्रश्वास की गति नियमित करनेवाले प्राणायाम की शक्ति उद्भासित होती है।[1] प्राणायाम से प्रकाश का आवरण नष्ट हो जाता है और मन में एकाग्रता की योग्यता आ जाती है।[2] प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास की वायु के विशेष नाम हैं। प्रश्वास (बाहर छोडी जाने वाली वायु) का नाम रेचक है, श्वास (भीतर जाने वाली वायु) को पूरक कहते है और भीतर रोकी जाने वाली कुंभक कहलाती है। शिवसंहिता मे प्राणायाम करने की आरंभिक विधि का सुन्दर निरूपण किया गया है।[3]

फिर बुद्धिमान अपने दाहिने अँगूठे से पिगला (नाक का दाहिना

---

[1]तस्मिन्त्सनि श्वास प्रश्वास योर्गत विच्छेदः

प्राणायामः [पतंजलि योगसूत्र २—साधनपाद, सूत्र ४६

[2]ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् [,, ,, सूत्र ५२

धारणा सु च योग्यता मनसः [पतंजलि योगसूत्र,

२—साधनपाद, सूत्र ५३

[3]ततश्च दक्षांगुष्ठेन विरुद्धय पिंगलां सुधी
इडया पूरयेद्वायुं यथाशक्या तु कुम्भयेतु
ततस्यक्त् वा पिंगलयाशनैरव न वेगतः

[शिवसंहिता, तृतीय पटल, श्लोक २२

पुनः पिंगल्याऽऽपूर्य यथाशक्त्य तु कुम्भयेत
इडया रेच्येद्वायुं न वेगेन शनैः शनैः

[शिवसंहिता, तृतीय पटल, श्लोक २३

भाग) बंद करे। इडा (बाँये भाग) से साँस भीतर खींचे, और इस प्रकार यथाशक्ति वायु अंदर ही बंद रखे। इसके पश्चात् ज़ोर से नहीं, धीरे-धीरे दाहिने भाग से साँस बाहर निकाले। फिर वह दाहिने भाग से साँस खींचे, और यथा-शक्ति उसे रोके रहे, फिर बाँये भाग से ज़ोर से नहीं, धीरे-धीरे वायु बाहर निकाल दे।

प्रत्याहार में इंद्रियाँ अपने कार्यों से अलग हट कर मन के अनुकूल हो जाती है। अपने विषयों का उपेक्षा कर इंद्रियाँ चित्त के स्वरूप का अनुकरण करती है।[१] साधारण मनुष्य अपनी इंद्रियों का दास होता है। इंद्रियों के दुःख से उसे दुःख होता है और सुख से सुख। योगी इससे भिन्न होता है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम की साधना के बाद वह अपनी इंद्रियों को अपने मन के अनुरूप बना लेता है। जब वह नहीं देखना चाहता तो उसकी आँखें बाह्य पदार्थ के चित्र को ग्रहण ही नहीं करती, चाहे वे पूर्ण रूप से खुली ही क्यों न हो। जब वह स्वाद नही लेना चाहता तो उसको जिह्वा सारे पदार्थों का स्वाद-गुण अनुभव ही न करे चाहे वे उस पर रखे ही क्यो न हों। यही नही, वे इंद्रिया मन के इतने वश में हो जाती है कि मन की वांछित वस्तुएँ भी वे मन के समक्ष रख देती हैं।[२] यदि मन संगीत सुनना चाहता है तो कर्णेंद्रिय मधुर से मधुर शब्द-तरंगों को ग्रहण कर मन के समीप उपस्थित कर देती है। यदि मन सुन्दर दृश्य देखना चाहता है तो नेत्र चित्र-तरंगों को ग्रहण कर मन के पटल पर सुन्दर चित्र अंकित कर देता है। कहने का तात्पर्य यही है कि इंद्रियाँ मन के स्वरूप ही का अनुकरण करने लगती है। प्राणायाम मे मन तो नियंत्रित होता ही है, प्रत्याहार

[१]स्वविषया संप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः
[पतंजलि योग-सूत्र, २—साधनपाद, सूत्र ५४

[२]ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्—
[पतंजलि योगसूत्र, २—साधनपाद, सूत्र ५४

से इंद्रियाँ भी नियंत्रित हो जाती है।

धारणा में मन किसी स्थान अथवा वस्तु-विशेष पर दृढ़ या केंद्रीभूत हो जाता है।[१] नाभि, हृदय, कंठ इनमें से किसी एक पर, समय में मन चक्कर लगाता रहे। यहाँ तक कि वह स्थान चित्र का रूप लेकर स्पष्ट सामने आ जाय।

ध्यान मे अनवरत रूप से वस्तु-विशेष पर चिंतन कर[२] अन्य विचारों की सीमा से मन को बाहर कर देना होता है! एक ही बात पर निरन्तर रूप से मन की शक्तियों को एकाग्र करने की आवश्यकता है।

धारणा और ध्यान के बाद समाधि आती है। समाधि में एकाग्रता चरम सीमा पर पहुँच जाती है। जिस वस्तु-विशेष का ध्यान किया जाता है, उसी वस्तु का आतंक सारे हृदय में इस प्रकार हो जाय कि हृदय अपने अस्तित्व ही को भुला दे। केवल एक भाव—एक विचार ही का प्रकाश रह जाय। उसी प्रकाश मे हृदय समा जाय[३] मन शरीर से मुक्त होकर एक अनंत प्रकाश मे लीन हो जाय।[४] यही तीनों धारणा, ध्यान, समाधि मिलकर संयम का रूप लेते है।[५]

कबीर के 'शब्दों' में हमें योग के इन आठ अंगों का रूप तो मिलता है पर बहुत विकृत। उसमें केवल भाव है, उसका स्पष्टीकरण नहीं है। हम कबीर के 'शब्दों' में यम का विशेष विवरण पाते है।

---

[१]देश बन्धश्चित्तस्य धारणा—३—विभूतिपाद, सूत्र १

[२]तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्— ” सूत्र २

[३]तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः—
३—विभूतिपाद, सूत्र ३

[४]घटाद्भिन्नं मनः कृत्वा ऐक्यं कुर्यात् परात्मनि
समाधिं तं विजानीयान्तक्त संज्ञो दशादिभिः—
घेरंड संहिता, सप्तमोपदेश, श्लोक ३

[५]त्रयमेकत्र संयमः [पतंजलि योग-सूत्र ३—विभूतिपाद, सूत्र ४

यम:—

(अ) अहिंसा

मांस अहारी मानवा
परतछ राक्षस अङ्ग,
तिनकी सङ्गति मत करो
परत भजन में भङ्ग।
जोरि कर जिबहै करै,
कहते हैं ज हलाल,
जब दफतर देखैगा दई,
तब ह्वैगा कौन हवाल।

(आ) सत्य

साँई सेती चोरिया
चोरां सेती गुभ्फ
जाणैगा रे जीवणा,
मार पड़ेगी तुझ।

(इ) अस्तेय

कबीर तहाँ न जाइये,
जहाँ कपट का हेत,
जालू कली कनीर की
तन राता मन सेत।

(ई) ब्रह्मचर्य

नर नारी सब नरक हैं,
जब लग देह सकाम,
कहै कबीर ते राम के,
जे सुमिरें निहकाम।

(उ) अपरिग्रह

कबीर तष्ना टोकरणी,
लीए फिरे सुभाइ,
राम नाम चींन्हें नहीं,
पीतलि ही के चाइ ।

कबीर ने आसन और प्राणायाम का महत्व प्रभावशाली शब्दों में बतलाया है । इसी के द्वारा उन्होंने यह समझाने का प्रयत्न किया है कि शरीर की शक्तियो को सुसंगठित कर उत्तेजित करने से परमात्मा से मिलन हो सकता है । यह बात दूसरी है कि उन्होने धारणा, ध्यान और समाधि पर विशेष नहीं कहा, पर उनके प्राणायाम से यह लक्षित अवश्य हो गया है कि ध्यान और समाधि ही के लिये प्राणायाम की आवश्यकता है। प्राणायाम के अभ्यास मे प्राण-वायु के द्वारा शरीर में स्थित वायुनाड़ियाँ और चक्र उत्तेजित होते है और उनमें शक्ति आती है । इन्ही वायु-नाड़ियो और चक्रों में शक्ति का संचार होने से मनुष्य में यौगिक शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं । शिवसंहिता के अनुसार शरीर में ३,५०,००० नाड़ियाँ है । इनके बिना शरीर मे प्राणायाम का कार्य नहीं हो सकता । दस नाडियाँ अधिक महत्व की है । वे ये है :—

१—इडा— (शरीर की बाईं ओर)
२—पिगला— (,, दाहिनी ओर)
३—सुषुम्णा— (,, के मध्य में)
४—गंधारी— (बाईं आँख मे)
५—हस्तिजिह्वा— (दाहिनी आँख में)
६—पुष्प— (दाहिने कान में)
७—यशस्विनी— (बायें कान में)
८—अलमबुश— (मुख में)
९—कुहू— (लिंग स्थान में)
१०—शंखिनी— (मूल स्थान में)

इन दस नाड़ियों में तीन नाड़ियाँ मुख्य है। इडा, पिंगला और सुषुम्णा। इडा मेरु-दंड (Spinal Column) की बाईं ओर है। वह सुषुम्णा से लिपटती हुई नाक की दाहिनी ओर जाती है।[1] पिंगला नाड़ी मेरु-दंड की दाहिनी ओर है। वह सुषुम्णा से लिपटती हुई नाक की बाईं ओर जाती है।[2] दोनों नाड़ियाँ समाप्त होने से पहले एक दूसरे को पार कर लेती है। ये दोनों नाड़ियाँ मूलाधार चक्र (गुह्य स्थान के समीप—Plexus of Nerves) से आरंभ होती है और नाक में जाकर समाप्त होती है। ये दोनो नाडियाँ आधुनिक शरीर-विज्ञान में 'गेग्लिएटेड कार्ड्स' (Gangliated Chords) के नाम से पुकारी जा सकती है?

तीसरी सुषुम्णा इडा और पिंगला के मध्य मे है।[3] उसकी छः स्थितियाँ है, छः शक्तियाँ है, और उसमें छः कमल है। वह मेरु-दंड में से जाती है। वह नाभि-प्रदेश से उत्पन्न होकर मेरु-दंड से होती हुई ब्रह्म-चक्र में प्रवेश करती है। जब यह नाड़ी कंठ के समीप आती है तो दो भागों में विभाजित हो जाती है। एक भाग तो त्रिकुटी (दोनो भौंहो के मध्य स्थान) लोब ऑव इंटैलिजेंस (Lobe of Intelligence) में पहुँच कर ब्रह्म-रंध्र से मिलता है और दूसरा भाग सिर के पीछे से होता

---

[1]इडा नाम्नी तु या नाडी वाम मार्गे व्यवस्थिता
सुषुम्णायां समाश्लिष्य दक्ष नासापुटे गता...
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २५

[2]पिंगला नाम या नाडी दक्ष मार्गे व्यवस्थिता
मध्य नाडीं समाश्लिष्य वाम नासापुटे गता...
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २६

[3]इडा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्णा या भवेत्खलु
षट स्थानेषु च षटशक्ति षटपद्मं योगिनो विदु...
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २७

हुआ ब्रह्म-रंध्र में आ मिलता है।[१] योग में इसी दूसरे भाग की शक्तियों की वृद्धि करना आवश्यक माना गया है। इन तीन नाड़ियों में सुषुम्णा बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसी के द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है।

इस सुषुम्णा नाड़ी के निम्न मुख में कुंडलिनी (सर्पाकार दिव्यशक्ति) निवास करती है।[२] जब कुंडलिनी प्राणायाम से जागृत हो जाती है, तो वह सुषुम्णा के सहारे आगे बढ़ती है। सुषुम्णा के भिन्न-भिन्न अंगों (चक्रों) से होती हुई और उनमें शक्ति डालती हुई वह कुंडलिनी ब्रह्म-रंध्र की ओर बढ़ती है। जैसे जैसे कुंडलिनी आगे बढ़ती है वैसे मन भी शक्तियाँ प्राप्त करता जाता है। अन्त में जब यह कुंडलिनी सहस्र-दल कमल में पहुंचती है तो सारी यौगिक क्रियाएँ सिद्ध हो जाती हैं और योगी मन और शरीर से अलग हो जाता है। आत्मा पूर्ण स्वतन्त्र हो जाती है।

सुषुम्णा की भिन्न भिन्न स्थितियाँ जिनमे से होकर कुंडलिनी आगे बढ़ती है, चक्रों के नाम से पुकारी जाती है सुषुम्णा में छः चक्र है।

सब से नीचे का चक्र बेसिक प्लेक्सस (Basic Plexus) कहलाता है। यह मेरु-दंड के नीचे तथा गुह्य और लिंग के मध्य में रहता है।[३] इसमें चार दल होते है। इसका रंग पीला माना गया है और इसमे गणेश का रूप ही आराधना का साधन है। इसके चार दल अक्षरों के संयुक्त हैं—व श ष स। इस चक्र में एक त्रिकोण आकार है

---

[१]दि मिस्टीरियस कुंडलिनी (रेले) पृष्ठ ३६

[२]तत्र विद्युल्लताकारा कुंडली पर देवता
सार्द्धत्रिकरा कुटिला सुषुम्णा मार्ग संस्थिता—
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २३

[३]गुदा द्वयंगुल्तश्चोर्ध्वं मेढ़ैकांगुलस्त्वधः
एवं चास्ति समं कंदं समत्वांच तुरंगुलम्—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ५

जिसमें कुंडलिनी, वेगस नर्व (Vagus Nerve) निवास करती है। उसका शरीर सर्प के समान साढ़े तीन बार मुड़ा हुआ है और वह अपने मुख में अपनी पूंछ दबाए हुए है। वह सुषुम्णा नाड़ी के छिद्र के समीप स्थित है।[१]

उसका रूप इस प्रकार है :—

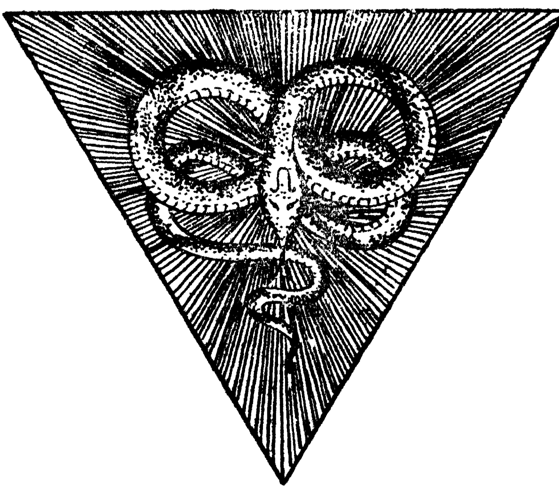

कुंडलिनी

कुंडलिनी, वेगस नर्व (Vagus Nerve) ही हठयोग में बड़ी

[१] मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णा विवरे स्थिता—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ५७

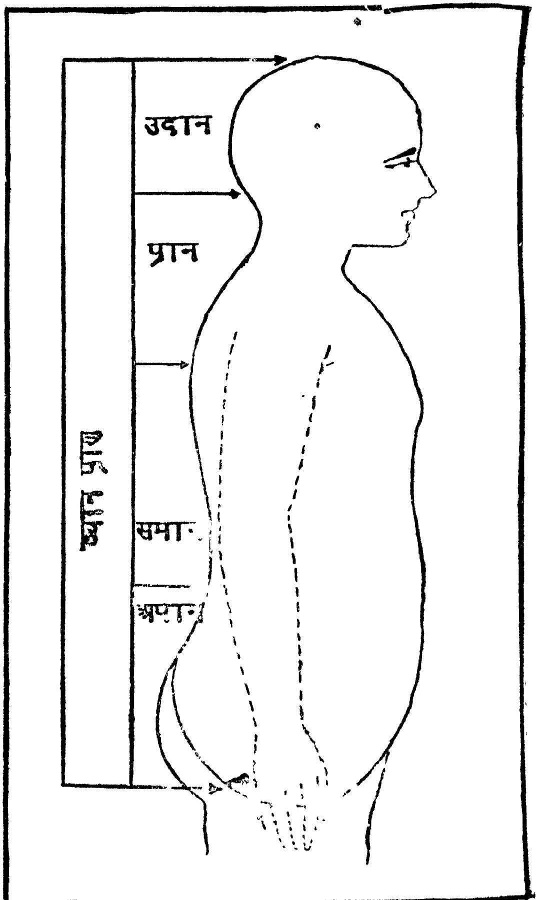

वायु निरूपण.

चित्र १

शक्ति है। वह संसार की सृजन-शक्ति है।[१] वह वाग्देवी है जिसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। वह सर्प के समान होती है और अपनी ही ज्योति से आलोकित है।[२] इस कुंडलिनी के जागृत होने की रीति समझने के पहले पंच-प्राण का ज्ञान आवश्यक है। यह प्राण एक प्रकार की शक्ति है जो शरीर में स्थिर होकर हमारे शारीरिक कार्यों का संचालन करती है। इसे वायु भी कहते है। शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में स्थित होने के कारण इसके भिन्न-भिन्न नाम हो गए हैं। शरीर में दस वायु हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय।[३] इनमें से प्रथम पाँच मुख्य है। प्राण-वायु हृदय-प्रदेश का शासन करती है। अपान नाभि के नीचे के भागों में व्याप्त है समान नाभि-प्रदेश में है। उदान कंठ मे है और व्यान सारे शरीर मे प्रवाहित है। इसका रूप चित्र १ मे देखिए।

योगी इन सब प्रकार की वायुओ को नाभि की जड़ से ऊपर उठाता है और प्राणायाम के द्वारा उन्हे साधता है। इन्हीं वायुओं की साधना कर सूर्यभेद-कुंभक प्राणायाम को विशिष्ट क्रिया द्वारा वह योगी मृत्यु का विनाश करता है और कुंडलिनी शक्ति को जागृत करता है।[४] इस

---

[१]जगत्संसृष्टि रूपा सा निर्माणे सतुतोद्यता
वाचाम वाच्या वग्देवी सदा देवैर्नमस्कृता—
[शिवसंहिता, द्वितोय पटल, श्लोक २४

[२]सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरतो प्रभया स्वया...
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ५८

[३]प्राणोऽपान समानश्चोदान व्यानौ तथैव च
नाग: कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जय...
[घेरंड संहिता, पंचम उपदेश, श्लोक ६०

[४]कुंभक: सूर्यभेदस्तु जरा मृत्यु विनाशक:
बोधयेत कुण्डलीं शक्तिं देहानलं विवर्धयेत्—
[घेरंड संहिता, पंचम उपदेश, श्लोक ६८

प्रकार कुंडलिनी के जागृत करने के लिए इन पंच प्राणों के साधन की भी आवश्यकता है। कबीर ने इन वायुओ के संबंध में अनेक स्थानों पर लिखा है :—

तिन बिनु बाणै धनुष चढ़ाइयें
इहु जग बेध्या भाई,
दह दिसी बूड़ी पवन झुलावै
डोरि रही लिव लाई।
+ + +
पृथ्वी का गुण पानी सोख्या
पानी तेल मिलावहिंगे,।
तेज पवन मिलि, पवन सबद मिलि
ये कहि गालि तवावहिंगे।
+ + +
उलटी गंग नीर बहि आया
अमृत धार चुवाई,
पाँच जने सो सँग कर लीन्हें
चलत खुमारी लागी।
+ + +

मूलाधार चक्र पर मनन करने से उस ज्ञानी पुरुष को दरदुरी सिद्धि (मेढक के समान उछलने की शक्ति) प्राप्त होती है और शनैः शनैः वह पृथ्वी को संपूर्णतः छोड़ कर आकाश में उड़ सकता है।[१] शरीर का तेज उत्कृष्ट होता है, जठराग्नि बढ़ती है, शरीर रोग-मुक्त हो जाता है, बुद्धि और सर्वज्ञता आती है। वह कारणों के सहित भूत, वर्तमान और भविष्य

[१]यः करोति सदा ध्यानं मूलाधारे विचक्षणः
तस्य स्याद्दर्दुरी सिद्धि र्भूमित्यागक्रमेण वै—
[शिवसंहिता, पंचम पटल के ६४, ६५, ६६, ६७ श्लोक

जान जाता है। वह न सुनी गई विद्याओं को उनके रहस्यों सहित जान जाता है। उसकी जीभ पर सदैव सरस्वती नाचती है। वह जपने-मात्र से मंत्र-सिद्धि प्राप्त कर लेता है। वह जरा, मृत्यु और अगणित कष्टों को नष्ट कर देता है। उस चक्र का रूप इस प्रकार है :—

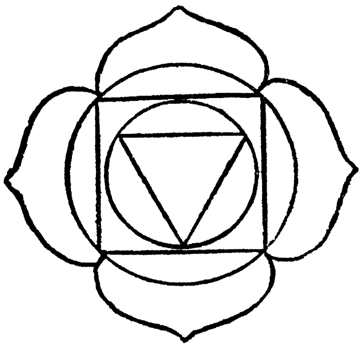

मूलाधार चक्र

(२) स्वाधिष्ठान चक्र

यह चक्र लिंगमूल में स्थित है।[१] शरीर-विज्ञान के अनुसार इसे हाइपोगास्ट्रिक प्लेक्सस (Hypogastric Plexus) कह सकते हैं। इसमें छः दल होते है। इसके संकेताक्षर हैं ब, भ, म, य, र, ल। इसका नाम स्वाधिष्ठान चक्र है। यह चक्र रक्त वर्ण है। जो इस चक्र पर चिंतन करता है, उसे सभी सुन्दर देवांगनाएँ प्यार करती है। वह विश्व

---

१ द्वितीयंतु सरोजं च लिंगमूले व्यवस्थितम्
बादिलांतं च षड्वर्णं परिभास्वर षड्दलम्—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ७५

भर में बंधन मुक्त और भय रहित होकर घूमता है। वह अणिमा और लघिमा सिद्धियों का स्वामी बन मृत्यु जीत लेता है।

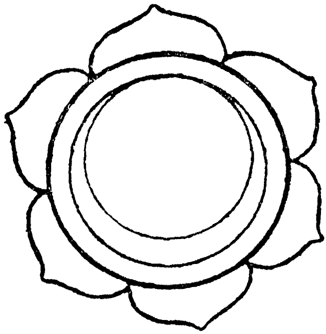

स्वाधिष्ठान चक्र

(३) मणिपूरक चक्र

यह चक्र नाभि के समीप स्थित है। यह सुनहले रंग का है, इसके दस दल हैं। इसके दलों के संकेताक्षर है। ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ। इसे शरीर-विज्ञान के अनुसार कदाचित् सोलर प्लेक्सस (Solar Plexus) कहते हैं। इस चक्र[१] पर चिंतन करने से योगी पाताल (सदा सुख देने वाली) सिद्धि प्राप्त करता है। वह इच्छाओं का स्वामी, रोग और दुःख का नाशकर्त्ता हो जाता है। वह दूसरे के शरीर में प्रवेश

---

[१] 'तृतीयं पंकजं नाभौ मणिपूरक संज्ञकम्
दशारं डाफिकांतार्णं शोभितं हेमवर्णकम्।
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ७६

कर सकता है। वह स्वर्ण बना सकता है और छिपा हुआ खजाना भी देख सकता है।

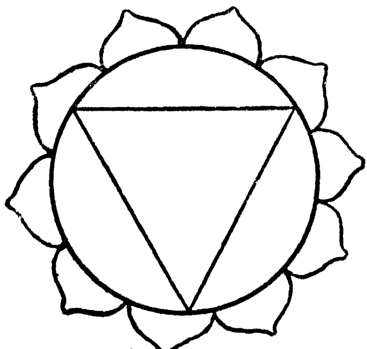

मणिपूरक चक्र

(४) अनाहत चक्र

यह चक्र हृदय-स्थल में रहता है।[१] इसके बारह दल होते हैं। इसके संकेताक्षर हैं, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ। यह रक्त वर्ण है। शरीर-विज्ञान के अनुसार यह कारडियक प्लेक्सस (Cardiac plexus) कहा जा सकता है। जो इस चक्र पर चिंतन करता है वह अपरिमित ज्ञान प्राप्त करता है। भूत, भविष्य और वर्त्तमान जानता

---

[१] हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पंकजं भवेत्।
कादिठांतार्थ संस्थानं द्वादशारसमन्वितम्।
अतिशोणं वायु बीजं प्रसादस्थानमोरितम्॥
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ८३

है। वह वायु में चल सकता है, उसे खेचरी शक्ति (आकाश में जाने की शक्ति) मिल जाती है। इस चक्र का रूप इस प्रकार है :—

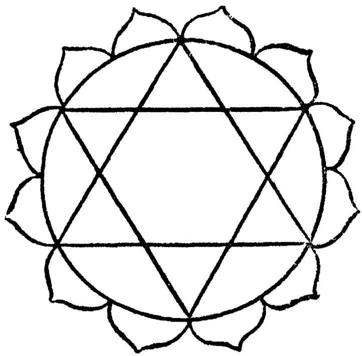

अनाहत चक्र

कबीर इस चक्र के विषय में कहते हैं :—

द्वादस दल अभिअन्तर म्यंत,
तहाँ प्रभु पाइसि कर ले च्यंत।
अभिलन मलिन धरह नहीं छाहाँ,
दिवसे न राति नहीं है ताहाँ। शब्द ३२८

(५) विशुद्ध चक्र

यह चक्र कंठ में स्थित है।[१] इसका रंग देदीप्यमान स्वर्ण की भाँति है। इसमें १६ दल हैं, यह स्वर-ध्वनि का स्थान है। इसके संकेताक्षर हैं, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

---

[१] **कंठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नामपंचमम्।**
सुहेमाभं स्वरोपेतं षोडशस्वर संयुतम्॥
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ९०

शरीर-विज्ञान के अनुसार इसे फैरिंगील प्लेक्सस (Pharyngeal Plexus) कह सकते है । जो इस चक्र पर चिन्तन करता है वह वास्तव में योगेश्वर हो जाता है । वह चारो वेदों को उनके रहस्यों के साथ समझ सकता है । जब योगी इस स्थान पर अपना मन केन्द्रित कर क्रुद्ध होता है तो तीनों लोक काँप उठते है । वह इस चक्र पर ध्यान करते ही बहिर्जगत का परित्याग कर अन्तर्जगत मे रमने लगा है । उसका शरीर कभी निर्बल नहीं होता और वह १,००० वर्ष तक शक्ति-सहित जीवन व्यतीत करता है ।

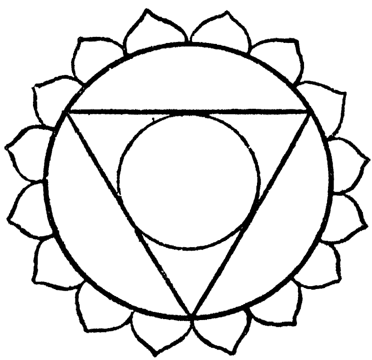

विशुद्ध चक्र

(६) आज्ञा चक्र

यह चक्र त्रिकुटी (भौंहों के मध्य) में स्थित है ।[1] इसमें दो दल

---

[1] आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम्
शुक्लाभं त महाकाल: सिद्धो देव्यत्र हाकिनी—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ९६

हैं, इसका रंग श्वेत है, संकेताक्षर ह और क्ष है। शरीर-विज्ञान के अनुसार इसे केवरनस प्लेक्सस (Cavernous Plexus) कह सकते हैं। यह प्रकाश-बीज है, इस पर चिंतन करने से ऊँची से ऊँची

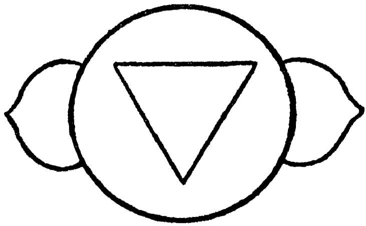

अज्ञा चक्र

सफलता मिलती है।[१] इसके दोनों ओर इडा और पिंगला हैं वही मानो क्रमशः वरणा और असी है और यह स्थान वाराणसी है। यहाँ विश्वनाथ का वास है।

कुण्डलिनी सुषुम्णा के छः चक्रों में से होती हुई ब्रह्म-रंध्र पहुँचती है। वहाँ सहस्र-दल कमल है, उसके मध्य में एक चन्द्र है। उस त्रिकोण भाग से जहां चन्द्र है, सदैव सुधा बहती है। वह सुधा इडा नाड़ी द्वारा प्रवाहित होती है। जो योगी नहीं है, उनके ब्रह्म-रंध्र से जो अमृत प्रवाहित होता है उसका शोषण मूलाधार चक्र में स्थित सूर्य द्वारा[२] हो जाता है और इस प्रकार वह नष्ट हो जाता है। इससे शरीर

---

[१]एतदेव परंतेजः सर्वतन्त्रेषु मात्रिणः।
चिन्तयित्वा सिद्धि लभते नात्र संशयः।
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ६८

[२]मूलधारे हि यत्पद्मं चतुष्पत्रं व्यवस्थितम्।
तत्र मध्यहि या योनिस्तस्यां सूर्यो व्यवस्थितः।
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक १०६

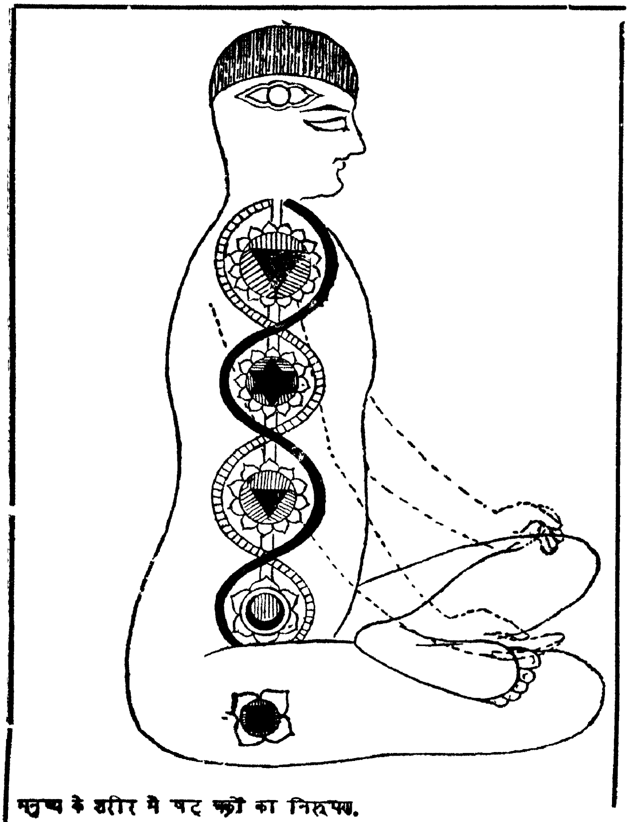

नाड़ियों सहित मनुष्य के शरीर में षट् चक्र

चित्र २

वृद्ध होने लगता है। यदि साधक इस प्रवाह को किसी प्रकार रोक दे और सूर्य से शोषण न होने दे तो उस सुधा को वह अपने शरीर की शक्तियो की वृद्धि करने में लगा सकता है। उस सुधा के उपयोग से वह अपना सारा शरीर जोवन की शक्तियों से भर लेगा और यदि उसे तक्षक सर्प भी काट ले तो उसके सर्वांग मे विष नहीं फैल सकता।[1]

सहस्र-दल कमल तालु-मूल में स्थित है।[2] वहीं पर सुषुम्णा का छिद्र है। यही ब्रह्म-रंध्र कहलाता है। तालु-मूल से सुषुम्णा का नीचे की ओर विस्तार है।[3] अन्त में वह मूलाधार चक्र में पहुंचती है। वहीं से कुंडलिनी जागृत होकर सुषुम्णा में ऊपर बढ़ती है और अन्त में ब्रह्म-रंध्र में पहुंचती है। ब्रह्म-रंध्र में ब्रह्म की स्थिति है जिसका ज्ञान योगी सदैव प्राप्त करना चाहता है। इस रंध्र में छः दरवाजे हैं जिन्हें कुंडलिनी ही खोल सकती है। इस रंध्र का रूप विंदु (०) रूप है। इसी स्थान पर 'प्राण-शक्ति' संचित की जाती है। प्राणायाम की उत्कृष्ट स्थिति में इसी विंदु में आत्मा ले जाई जाती है। इसी विंदु में आत्मा शरीर से स्वतन्त्र होकर 'सोऽहं' का अनुभव करती है। मनुष्य के शरीर में षट्चक्रों का निरूपण चित्र २ में देखिए।

कबीर ने अपने शब्दों में इन चक्रों का वर्णन विस्तार से तो नहीं किंतु साधारण रूप से किया है। उदाहरणार्थ एक पद लीजिए :—

---

[1]हठयोग प्रदीपिका पृष्ठ ५३

[2]अतः उर्ध्व तालुमूले सहस्रारं सरोरुहम्
अस्ति यत्र सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम्—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक १२०

[3]तालमूले सुषुम्णा सा अधोवक्त्रा प्रवर्तते—
[शिवसंहिता; पंचम पटल, श्लोक, १२१

(ब्रह्म-रंध्र के विंदु पर)

ब्रह्म अगनि में काया जारै,
त्रिकुटी संगम जागै,
कहै कबीर सोई जोगेश्वर,
सहज सुन ल्यो लागै ।

कबीर ग्रंथावली, शब्द ६९

सहज सुन्न इक बिरवा उपजा
धरती जलहर सोख्या,
कहि कबीर हों ताका सेवक
जिन यहु बिरवा देख्या ।

शब्द १०८

जन्म मरन का भय गया,
गोविन्द लव लागी,
जीवत सुन्न समानिया,
गुरु साखी जागी ।

शब्द ७३

रे मन बैठि कितै जिन जासी ।
उलटि पवन षट चक्र निवासी,
तीरथ राज गंग तट वासी ।
गगन मंडल रवि ससि दोइ तारा,
उलटी कूंची लाग किवारा ।
कहै कबीर भया उजियारा,
पंच मारि एक रह्यो निनारा ।

प्राणायाम की साधना की सफलता धारणा, ध्यान और समाधि के रूप में पहिचान कर कबीर ने उनका एक साथ ही वर्णन कर दिया है। हम कबीर को योग-शास्त्र का पूर्ण पंडित उनके केवल सत्संग ज्ञान से नहीं मान सकते। धारणा, ध्यान, और समाधि का संमिश्रण हम उनके रेखतों में

व्यापक रूप से पाते हैं। न तो उन्होंने धारणा का ही स्वरूप निर्धारित किया है और न ध्यान एवं समाधि ही का। तीनों की 'त्रिबेनी' उन्होंने एक साथ ही प्रवाहित कर दी है। इस स्थल को समझने के लिए उनके वे रेख़ते जिनमें उन्होंने प्राणायाम के साथ धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया है उद्धृत करना अयुक्तिसंगत न होगा।

देख वोजूद में अजब बिसराम है
होय मौजूद तो सही पावै,
फेरि मन पवन को घेरि उलटा चढ़े
पाँच पच्चीस को उलटि लावै।
सुरत का डोर सुख सिंध का झूलना
घोर की सोर तहँ नाद गावै,
नीर बिन कंवल तह देखि अति फूलिया
कहै कब्बीर मन भँवर छावै।
चक्र के बीच में कंवल अति फूलिया
तासु का सुक्ख कोई संत जानै,
क़ुलुफ़ नौ द्वार औ पवन का रोकना
तिरकुटी मद्ध मन भँवर आनै,
सबद की घोर चहूँ ओर ही होत है
अधर दरियाव को सुक्ख मानै,
कहै कब्बीर यों झूल सुख सिंध में
जन्म और मरन का भर्म भानै।
गंग और जमुन के घाट को खोजि ले
भँवर गुंजार तहं करत भाई,
सरसुती नीर तह देखु निर्मल बहै
तासु के नीर पिये प्यास जाई,
पांच की प्यास तहं देखि पूरी भई
तीन ताप तहं लगे नाहीं,

कहै कब्बीर यह अगम का खेल है
गैब का चांदना देख माँही।
गड़ा निस्सान तहँ सुन्न के बीच में
उलटि के सुरत फिर नाँहि आवै,
दूध को मत्थ करि घिर्त न्यारा किया
बहुरि फिर तत्त में ना समावै,
माड़ मत्थान तहँ पाँच उलटा किया
नाम नौनीति लै सुक्ख फेरी,
कहै कब्बीर यों सन्त निर्भय हुआ
जन्म और मरन की मिटी फ़ेरी।

सूफ़ीमत और कबीर

रहस्यवाद का अंतिम लक्ष्य है आत्मा और परमात्मा का मिलन। इस मिलन में एक बात आवश्यक है। वह आत्मा की पवित्रता है। यदि आत्मा में ईश्वर से मिलने की उत्कट आकांक्षा होने पर भी पवित्रता नहीं है तो परमात्मा का मिलन नहीं हो सकता। आत्मा की सारी आकांक्षा घनीभूत होकर पवित्रता की समता नहीं कर सकती। पवित्रता में जो शक्ति है वह आकांक्षा में कहाँ ? आकांक्षा न होने पर भी पवित्रता दैवी गुणों का आविर्भाव कर सकती है। उसमें आध्यात्मिक तत्व की वे शक्तियाँ अंतर्निहित हैं जिनसे ईश्वर की अनुभूति सहज ही में हो सकती है। यह पवित्रता उन विचारों से बनती है जिनमें वासना, छल, कुरुचि और अस्तेय का बहिष्कार है। वासना का कलुषित व्यभिचार हृदय को मलीन न होने दे। छल का व्यवहार मन के विचारों को विकृत न होने दे! कुरुचि का जघन्य पाप हृदय की प्रवृत्तियों को बुरे मार्ग पर न ले जाय और अस्तेय का आतंक हृदय में दोषों का समुदाय एकत्रित न कर दे ? इन दोषों के आतंक से निकल कर जब आत्मा अपनी प्राकृतिक क्रिया करती हुई जीवन के अंग प्रत्यंग में प्रकाशित होती है तो उसका वह आलोक पवित्रता के नाम से पुकारा जाता है। यह पवित्रता ईश्वरीय मिलन के लिये आवश्यक सामग्री है। जलालुद्दीन रूमी ने यही बात अपनी मसनवी के ३४६० वे पद्य में लिखी है, जिसका भावार्थ यह है कि 'अपने अहम् की विशेषताओ से दूर रह कर पवित्र बन, जिससे तू अपना मैल से रहित उज्जवल तत्व देख सके।'

यह पवित्रता केवल बाह्य न हो आंतरिक भी होनी चाहिए। स्नान कर चंदन तिलक लगाना पवित्रता का लक्षण नहीं है। पवित्रता का लक्षण है हृदय की निष्कपट और निरीह भावना। उसी पवित्रता से

ईश्वर प्रसन्न होता है। तभी तो कबीर ने कहा :—

> कहा भयो रचि स्वाँग बनायो,
> अंतरजामी निकट न आयो।
> कहा भयो तिलक गरैं जपमाला,
> मरम न जानें मिलन गोपाला॥
> दिन प्रति पसू करै हरिहाई,
> गरै काठ बाकी बांन न आई।
> स्वाँग सेत करणीं मनि काली,
> कहा भयो गलि माला घाली।
> बिन ही प्रेम कहा भयो रोए,
> भीतरि मैलि बाहरि कहा धोए।
> गलगल स्वाद भगति नहीं धीर,
> चीकन चँदवा कहै कबीर।

सारी वासनाओं को दूर कर हृदय को शुद्ध कर लो, यही परमात्मा से मिलन का मार्ग है! उसी पवित्र स्थान में परमात्मा निवास करता है जो दर्पण के समान स्वच्छ और पवित्र है, कु-वासनाओं की कालिमा से दूर है। रूमी ने ३४५९ वे पद्य में कहा है :—'साफ़ किये हुए लोहे की भाँति जंग के रंग को छोड़ दे, अपने तापस-नियोग से जंग-रहित दर्पण बन।' इसी विषय की विवेचना में उसने चित्र-कला के संबंध में ग्रीस और चीन वालो के वाद-विवाद की एक मनोरञ्जक कहानी भी दी है, उसे यहाँ लिख देना अनुपयुक्त न होगा।

चित्रकला में ग्रीस और चीनवालों के वाद-विवाद की कहानी

चीनवालों ने कहा—"हम लोग अच्छे कलाकार है।" ग्रीसवालों ने कहा—"हम लोगों में अधिक उत्कृष्टता और शक्ति है।"

३४६८, सुलतान ने कहा—"इस विषय में तुम दोनों की परीक्षा लूँगा। और तब यह देखूँगा कि तुममें से कौन अधिकार में सच्चा उतरता है।"

३४६९, चीन और ग्रीसवाले वाग्युद्ध करने लगे, ग्रीसवाले विवाद से हट गये।

३४७०, तब चीनियों ने कहा—"हमें कोई कमरा दे दीजिये और आप लोग भी अपने लिए एक कमरा ले लीजिये।"

३४७१, दो कमरे थे जिनके द्वार एक दूसरे के संमुख थे। चीनियों ने एक कमरा ले लिया, ग्रीसवालों ने दूसरा।

३४७२, चीनियों ने राजा से विनय की, उन्हें सौ रंग दे दिये जायँ। राजा ने अपना खज़ाना खोल दिया कि वे (अपनी इच्छित वस्तुएं) पा जायँ।

३४७३, प्रत्येक प्रातः राजा की उदारता से, खज़ाने की ओर से चीनियों को रंग दे दिये जाते।

३४७४, ग्रीसवालों ने कहा—"हमारे काम के लिये कोई रंग की आवश्यकता नहीं, केवल जंग छुड़ाने की आवश्यकता है।"

३४७५, उन्होंने दरवाजा बंद कर लिया और साफ़ करने में लग गए वे (वस्तुएँ) आकाश की भाँति स्वच्छ और पवित्र हो गईं।

३४७६, अनेक रंगता की शून्य की ओर गति है, रंग बादलों की भाँति है और शून्य रंग चंद्र की भाँति।

३४७७, तुम बादलो में जो प्रकाश और वैभव देखते हो, उसे समझ लो कि वह तारों, चंद्र और सूर्य से आता है।

३४७८, जब चीन वालों ने अपना काम समाप्त कर दिया, वे अपनी प्रसन्नता की दुंदुभी बजाने लगे।

३४७९, राजा आया और उसने वहाँ के चित्र देखे। जो दृश्य उसने वहाँ देखा, उससे वह अवाक् रह गया।

३४८०, उसके बाद वह ग्रीसवालो की ओर गया, उन्होंने बीच का परदा हटा दिया है।

३४८१, चीनवालों के चित्रों का और उनके कला-कार्यों का प्रतिबिंब इन दीवारों पर पड़ा जो जंग से रहित कर उज्ज्वल बना दी

गई थीं।

३४८२, जो कुछ उसने वहाँ (चीनवालों के कमरे में) देखा था, यहाँ और भी सुन्दर जान पड़ा। मानों आँख अपने स्थान से छीनी जा रही थी।

३४८३, ग्रीसवाले, ओ पिता ! सूफ़ी हैं। वे अध्ययन, पुस्तक और ज्ञान से रहित (स्वतंत्र) है।

३४८४, किन्तु उन्होने अपने हृदय को उज्ज्वल बना लिया है और उसे लोभ, काम, लालच और घृणा से रहित कर पवित्र बना लिया है।

३४८५, दर्पण की वह स्वच्छता ही निस्संदेह हृदय है, जो अंगणित चित्रों को ग्रहण करता है।

इस प्रकार आत्मा के पवित्र हो जाने पर उसमें परमात्मा के मिलने की क्षमता आती है।

आध्यात्मिक यात्रा के प्रारंभ में यद्यपि आत्मा परमात्मा से अलग रहती है, पर जैसे-जैसे आत्मा पवित्र बन कर ईश्वर से मिलने की आकांक्षा में निमग्न होने लगती है वैसे-वैसे उसमें ईश्वरीय विभूतियों के लक्षण स्पष्ट दीखने लगते है। जब आत्मा परमात्मा के पास पहुँचती है तो उस दिव्य संयोग में वह स्वयं परमात्मा का रूप रख लेती है। रूमी ने अपनी मसनवी के १५३१वें और उसके आगे के पद्यों में लिखा है—

जब लहर समुद्र में पहुँची, वह समुद्र बन गई। जब बीज खेत में पहुँचो वह शस्य बन गया।

जब रोटी जीवधारी (मनुष्य) के संपर्क में आई तो मृत रोटी जीवन और ज्ञान से परिप्रोत हो गई।

जब मोम और इँधन आग को समर्पित किये गए तो उनका अंधकार मय अन्तर-तम भाग जाज्वल्यमान हो गया।

जब सुरमे का पत्थर भस्मीभूत हो नेत्र में गया तो वह दृष्टि में परिवर्तित हो गया और वहाँ वह निरीक्षक हो गया।

ओह, वह मनुष्य कितना सुखी है जो अपने से स्वतंत्र हो गया है और एक सजीव के अस्तित्व में सम्मिलित हो गया है।

कबीर ने इसी विचार को बहुत परिष्कृत रूप में रक्खा है। वे यह नहीं कहते कि जब लहर समुद्र में पहुँची तो समुद्र बन गई, पर वे यह कहते है कि हम इस प्रकार दिखेगे जैसे तरंगिनी की तरंग, जो उसी में उत्पन्न होकर उसी में मिलती है। रूमी तो कहता है कि जब तरंग समुद्र में पहुँची तब वह समुद्र बनी। पहले वह समुद्र अथवा समुद्र का भाग नहीं थी। कबीर का कथन है कि तरंग तो सदैव तरंगिनी में वर्तमान है। उसी में उठती और उसी में गिरती है—

जैसे जलहि तरंग तरंगिनी,
ऐसे हम दिखलावहिंगे।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर,
हंसहि हंस मिलावहिंगे॥

ऐसे स्थिति में संसार के बीच आत्मा ही परमात्मा का स्वरूप ग्रहण करती है। आत्मा की सेवा मानों परमात्मा की सेवा है और आत्मा का स्पर्श मानों परमात्मा का स्पर्श है। आत्मा संसार में उसी प्रकार रहती है जिस प्रकार परमात्मा की विभूति संसार के अंग-प्रत्यंग में निवास करती रहती है। आत्मा में एक प्रकार की शक्ति आ जाती है जिसके द्वारा वह मनुष्यता को भूल कर विश्व की वृहत् परिधि में विचरण करने लगती है। वह मनुष्यता को पाप के कलुषित आतंक से बचाती है, पाप का निवारण करने लगती है और जो व्यक्ति ईश्वर विमुख है अथवा धार्मिक पथ के प्रतिकूल है उसे सदैव सहारा देकर उन्नति की ओर अग्रसर करती है। वह आत्मा जो ईश्वर के आलोक से आलोकित है, अन्य आत्माओं की अंधकारमयी रजनी में प्रकाश ज्योति बन कर पथ-प्रदर्शन करती है। उसमें फिर यह शक्ति आ जाती है कि वह संसार के भौतिक साधनों की नश्वरता को समझ कर आध्यात्मिक साधनों का महत्त्व लोगों के सामने रूपकों की भाषा में रखने लगे। उसी समय

आत्मा लोगों के सामने उच्च स्वर में कह सकती है कि मैं परमात्मा हूँ। मेरे ही द्वारा अस्तित्व का तत्व पृथ्वी पर वर्तमान है, यही रहस्यवाद की उत्कृष्ट सफलता है।

आत्मा के ईश्वरत्व की इस स्थिति को जलालुद्दीन रूमी ने अपनी मसनवी में एक कहानी का रूप दिया है। वह इस प्रकार है :—

ईश्वरत्व

शेख़ बायज़ीद हज्ज (बड़ी तीर्थ-यात्रा) और उमरा (छोटी तीर्थ-यात्रा) के लिये मक्का जा रहा था।

जिस जिस नगर में वह जाता वहाँ पहले वहाँ के महात्माओं की खोज करता।

—वह यहाँ वहाँ घूमता और पूछता, शहर में ऐसा कौन है जो (दिव्य) अंतर्दृष्टि पर आश्रित है ?

—ईश्वर ने कहा है—अपनी यात्रा में जहाँ कहीं तू जा; पहले तू महात्मा की खोज अवश्य कर। ख़ज़ाने की खोज में जा क्योंकि सांसारिक लाभ और हानि का नंबर दूसरा है। उन्हे केवल शाखाएं समझ, जड़ नहीं।

उसने एक वृद्ध देखा जो नये चंद्र की भाँति झुका हुआ था; उसने उस मनुष्य मे महात्मा का महत्व और गौरव देखा।

—उसकी आँखों में ज्योति नही थी, उसका हृदय सूर्य के समान जगमगा रहा था जैसे वह एक हाथी हो जो हिन्दुस्तान का स्वप्न देख रहा हो।

—आँखे बंद कर सषुप्त बन वह सैकड़ों उल्लास देखता है। जब वह आँखे खोलता है, तो उन उल्लासों को नही देखता। ओह, कितना आश्चर्य है !

—नीद में न जाने कितने आश्चर्य-जनक-व्यापार दृष्टिगत होते हैं, नींद में हृदय एक खिड़की बन जाता है।

—जो जागता है और सुंदर स्वप्न देखता है वह ईश्वर को जानता है। उसके चरणों की धूल अपनी आँखों में लगाओ।

—वह बायज़ीद उसके सामने बैठ गया और उसने उसकी दशा के विषय में पूछा, उसने उसे साधू और गृहस्थ दोनों पाया।

उसने (वृद्ध मनुष्य ने) कहा—ओ बायज़ीद, तू कहाँ जा रहा है ? अपरिचित प्रदेश में किस स्थान पर अपनी यात्रा का सामान ले जा रहा है ?

—बायज़ीद ने कहा—प्रातः मैं काबा के लिये रवाना हो रहा हूँ "ये" दूसरे ने कहा—"रास्ते के लिए तेरे पास क्या सामान है ?"

—"मेरे पास दो सौ चाँदी के दिरहम हैं" उसने कहा—"देखो वे मेरे अँगरखे के कोने में बंधे हैं।"

—उसने कहा—"सात बार मेरी परिक्रमा कर ले और इसे अपनी तीर्थ-यात्रा काबे की परिक्रमा से अच्छा समझ।"

—"और वे दिरहम मेरे सामने रख दे, ऐ उदार सज्जन ! समझ ले कि तूने काबा से अच्छी तीर्थ-यात्रा कर ली है और तेरी इच्छाओं की पूर्ति हो गई है।"

—"और तूने छोटी तीर्थ-यात्रा भी कर ली, अनंत जीवन को प्राप्ति कर ली। अब तू साफ हो गया।"

—"सत्य (ईश्वर) के सत्य से, जिसे तेरी आत्मा ने देख लिया है, मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि उसने अपने अधिवास से भी ऊपर मुझे चुन रखा है।"

—"यद्यपि काबा उसके धार्मिक कर्मों का स्थान है, मेरा यह आकार भी जिसमें मैं उत्पन्न किया गया था, उसके अंतरतम चित् का स्थान है।"

"जब से ईश्वर ने काबा बनाया है वह वहाँ नही गया अमेरेरो इस मकान में चित् (ईश्वर) के अतिरिक्त कोई कभी नहीं गया।"

—"जब तूने मुझे देख लिया, तो तूने ईश्वर को देख लिया। तूने

पवित्रता के काबा की परिक्रमा कर ली है।"

—"मेरी सेवा करना, ईश्वर की आज्ञा मान कर उसकी कीर्ति बढ़ाना है खबरदार, तू यह मत समझना कि ईश्वर मुझसे अलग है।"

—"अपनी आँख अच्छी तरह से खोल और मेरी ओर देख, जिससे तू मनुष्य में ईश्वर का प्रकाश देखे।"

बायजीद ने इन आध्यात्मिक वचनो की ओर ध्यान दिया। अपने कानों में स्वर्ण-बालियों की भाँति उन्हे स्थान दिया।

कबीर ने इसी भावना को निम्नलिखित पद्य मे व्यक्त किया है :—

हम सब माँहि सकल हम माँही,
हम थें और दूसरा नाहीं।
तीन लोक में हमारा पसारा,
आवागमन सब खेल हमारा।
खट दरशन कहियत भेखा,
हमही अतीत रूस नहीं रेखा।
हम ही आप कबीर कहावा,
हमही अपना आप लखावा।

जब आत्मा परमात्मा की सत्ता में इस प्रकार लीन हो जाती है तब उसमें एक प्रकार का मतवालापन आ जाता है। वह ईश्वर के नशे में दूर हो जाती है। संसार के साधारण मनुष्य जो उस मतवालेपन को नहीं जानते उसकी हँसी उड़ाते है। वे उसे पागल समझते हैं। वे क्या जाने उसे मस्त बना देने वाले आध्यात्मिक मदिरा के नशे को, जिसमें संसार को भुला देने की शक्ति होती है। रूमी ने ३४२६ वें और उसके आगे के पद्यों में लिखा है:—

जब मतवाला व्यक्ति मदिरालय से दूर चला जाता है वह बच्चों के हास्य और कौतुक की सामग्री बन जाता है। जिस रास्ते वह जाता है, कीचड़ में गिर पड़ता है, कभी इस ओर कभी उस ओर। प्रत्येक मूर्ख उस पर हँसता है। वह इस प्रकार चला जाता है और उसके पीछे चलने वाले

बच्चे उस मतवालेपन को नहीं जानते और नहीं जानते उसकी मदिरा के स्वाद को।

सभी मनुष्य बच्चों के समान है, केवल वही नहीं है जो ईश्वर के पीछे मतवाला है। जो वासनामयी प्रवृत्ति से स्वतंत्र है, उसे छोड़ कर कोई भी बडा नही है।

इस मतवालेपन का वर्णन कबीर ने भी शक्तिशाली रेख़ते में किया है। वह इस प्रकार है :—

छका अवधूत मस्तान माता रहै
ज्ञान वैराग सुधि लिया पूरा,
स्वास उस्वासा का प्रेम प्याला पिया
गगन गरजें तहाँ बजै तूरा।
पीठ संसार से नाम राता रहै
जातन जरना लिया सदा खेलै,
कहै कब्बीर गुरु पीर से सुरखरु
परम सुख धाम तह प्रान मेलै।

इस ख़ुमार को वे लोग किस प्रकार समझ सकेगे जिन्होंने "इश्क़ हक़ीक़ी", की शराब ही नही पी।

अनंत संयोग

(अवशेष)

इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का संयोग हो जाता है। आत्मा बढ़ कर अपने को परमात्मा तक खीच ले जाती है। जरसन ने तो इसी के सहारे रहस्यवादी की मीमांसा की थी। उन्होंने कहा था—रहस्यवादी की अभिव्यक्ति उसी समय होती है जब आत्मा प्रेम की अमूल्य निधि लिए हुए परमात्मा में अपना विस्तार करती है। पवित्र और उमंग भरे प्रेम से परिचालित आत्मा का परमात्मा में गमन ही तो रहस्यवाद कहलाता है।' डायोनिसस एक कदम आगे बढ कर कहते हैं: परमात्मा से आत्मा का अत्यंत गुप्त वाग्-विलास ही रहस्यवाद है।[1] डायोनिसस ने आत्मा को परमात्मा तक जाने का कष्ट ही नही दिया। उन्होंने केवल खड़े-खड़े ही आत्मा और परमात्मा में बातचीत करा दी।

इसी प्रकार रहस्यवाद की अन्य विलक्षण परिभाषाएँ हैं, जिनसे हम जान सकते है कि रहस्यवाद की अनुभूति भिन्न प्रकार से विविध रहस्यवादियों के हृदय में हुई है।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने तो आत्मा और परमात्मा के मिलन में दोनों को उत्सुक बतलाया है। यदि आत्मा परमात्मा से मिलना चाहती है तो परमात्मा भी आत्मा से मिलने की इच्छा रखता है। वे इसी भाव को अपनी 'आवर्तन' शीर्षक कविता में इस प्रकार लिखते हैं:—

धूप आपनारे मिलाइते चाहे गन्धे,
गन्धो शे चाहे धूपेरे रोहिते जुड़े।

---

[1]**स्टडीज् इन मिस्टिसिज्म, लेखक ए० वेट,**
पृष्ठ २७६

शूर आपनारे धोरा दिये चाहे छोंदे,
छोंद फिरिया छूटे लेते चाय शूरे।
भाव पेते चाय रूपेरे माझारे अङ्गे,
रूपो पेते चाय भावेरे माझारे छाड़ा।
ओसीम शे चाहे शीमार निबिड़ शंगो,
शीमा चाय होते ओशीमेरे माझै हारा।
प्रोलये इचजने ना जानि ए कारे जुक्ति,
भाव होते रूपे ओविराम जाओया आशा।
बन्ध फिरछे खूजिया आपोन मुक्ति,
मुक्ति मांगिछे बांधोनेर माझे बाशा।

इसका अर्थ यही है कि—

धूप (एक सुगंधित द्रव्य) अपने को सुगंधि के साथ मिला देना चाहता है,
गंध भी अपने को धूप के साथ संबद्ध कर देना चाहती है।
स्वर अपने को छंद में समर्पित कर देना चाहता,
छंद लौट कर स्वर के समीप दौड़ जाना चाहता है।
भाव सौंदर्य का अंग बनना चाहता है,
सौंदर्य भी अपने को भाव की अंतरात्मा में मुक्त करना चाहता है।
असीम ससीम का गाढ़ालिगन करना चाहता है,
ससीम असीम में अपने को बिखरा देना चाहता है।
मैं नहीं जानता कि प्रलय और सृष्टि किसका रचना-वैचित्र्य है,
भाव और सौंदर्य में अविराम विनिमय होता है।
बद्ध अपनी मुक्ति खोजता फिरता है,
मुक्त बंधन में अपने आवास की भिक्षा माँगता है।

सभी रहस्यवादी एक प्रकार से परमात्मा का अनुभव नहीं कर सके। विविध मनुष्यों में मानसिक प्रवृत्तियाँ विविध प्रकार से पाई जाती हैं। जिन मनुष्यों की मानसिक प्रवृत्तियाँ अधिक संयत और अभ्यस्त होंगी वे

परमात्मा का ग्रहण दूसरे ही रूप मे करेंगे, जिन मनुष्यों की मानसिक प्रवृत्तियाँ परिष्कृत न होगी वे रहस्यवाद की अनुभूति अस्पष्ट रूप में करेंगे। जिनकी मानसिक प्रवृत्तियाँ संसार के बन्धन से रहित हो पवित्रता और पुण्य के प्रशांत वायुमंडल में विराजती है वे ईश्वर की अनुभूति में स्वयं अपना अस्तित्व खो देगे। इन्ही प्रवृत्तियो के अन्तर के कारण परमात्मा की अनुभूति में अन्तर हो जाता है और इसीलिए रहस्यवाद की परिभाषाओं में अंतर आ जाता है।

परमात्मा के संयोग मे एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। जब आत्मा परमात्मा में लीन होती है तो उसके चारो ओर एक दैवी वातावरण की सृष्टि हो जाती है और आत्मा परमात्मा की उपस्थिति अपने समीप ही अनुभव करने लगती है। परमात्मा संसार से परे है और आत्मा संसार से आबद्ध ! इस सांसारीय वातावरण में आत्मा को ज्ञात होने लगता है मानो समीप ही कोई बैठा हुआ शक्ति संचार कर रहा है। आत्मा चुपचाप उस रहस्यमयी शक्ति से साहस और बल पाती हुई इस संसार मे स्वर्ग का अनुभव करती है। मारगेरेट मेरी ने रोलिन को जो पत्र लिखा था, उसका भावार्थ यही था :

"दिव्य त्राणकर्त्ता ने मुझसे कहा, मैं तुझे एक नई विभूति दूँगा। वह विभूति अभी तक दी हुई विभूतियो से उत्कृष्ट होगी। वह विभूति यही है कि मैं तेरी दृष्टि से कभी ओझल न होऊँगा। और विशेषता यह रहेगी कि तू सदैव मेरी उपस्थिति अनुभव करेगी।

मैं तो समझती हूँ अभी तक उन्होने अपनी दया से मुझे जितनी विभूतियाँ प्रदान की है, उन सभो से यह विभूति श्रेष्ठतर है। क्योंकि उसी समय से उस दिव्य परमात्मा की उपस्थिति अविराम रूप से मैं अनुभव कर रही हूँ। जब मं अकेली होती हूँ तो यह दिव्य उपस्थिति मेरे हृदय में इतनी श्रद्धा उत्पन्न करती है कि मैं अभिवादन के लिए पृथ्वी पर गिर पड़ती हूँ, जिससे मैं अपने त्राणकारी ईश्वर के सामने अपने को अस्तित्वहीन कर दूँगा। मैं यह भी अनुभव करती हूँ कि ये सब विभूतियाँ

अटल शांति और उल्लास से पूर्ण है।"[१]

इस पत्र से यह ज्ञात हो जाता है कि उत्कृष्ट ईश्वरीय विभूतियों का लक्षण ही यही है कि उसमें परमात्मा के सामीप्य का परिचय उसी क्षण मिल जाय। उस समय आत्मा की क्या स्थिति होती है? वह आनंद में विभोर होकर परमात्मा की शक्तियों में अपना अस्तित्व मिला देती है; वह उत्सुकता से दौड़ कर परमात्मा की दिव्य उपस्थिति में छिप जाती है। उस समय उसकी प्रसन्नता, उत्सुकता और आकांक्षा की परिधि इन काले अक्षरों के भीतर नहीं आ सकती। विलियम राल्फ इंज ने अपनी पुस्तक 'पर्सनल आइडियलिज्म एंड मिस्टिसिज्म' में उस दशा के वर्णन करने का प्रयत्न किया है :—

"इस दिव्य विभूति और शांति के दर्शन का स्वागत करने के लिए आत्मा दौड जाती है, जिस प्रकार बालक अपने पिता के घर को पहिचान कर उसकी ओर सहर्ष अग्रसर होता है।"[२]

कोई बालक अपने पिता के घर का रास्ता भूल जाय, वह यहाँ वहाँ भटकता फिरे उसे कोई सहारा न हो, उसी समय उसे यदि पिता के घर का रास्ता मिल जाय अथवा पिता का घर दीख पड़े तो उसके हृदय में कितनी प्रसन्नता होगी! उसी स्थिति की प्रसन्नता आत्मा में होती है, जब वह अपने पिता के समीप पहुचने का द्वार पा जाती है।

उस स्थिति मे उसके हृदय की तंत्री झनझना उठती है। रोम से—प्रत्येक रोम से एक प्रकार की संगीत-ध्वनि निकला करती है। वह संगीत उस के यश मे, उसी आदि-शक्ति के दर्शन-सुख में उत्पन्न होता है

---

[१]द प्रेसेज ऑव् इंटीरियर प्रेयर—पुलेन, पृष्ठ ८५

[२]The human soul leaps forward to greet this is vision of glory and harmony, as a child recognises and greets his father's house.

पर्सनल आइडियलिज्म मिस्टिसिज़्म, पृष्ठ १६

और आत्मा के संपूर्ण भाग में अनियंत्रित रूप से प्रवाहित होने लगता है। यही संगीत मानों आत्मा का भोजन है। इसीलिए सूफ़ियों ने इस संगीत का नाम मिज़ाये रुह रक्खा है। इसी के द्वारा आध्यात्मिक प्रेम में पूर्णता आती है। यह संगीत आध्यात्मिक प्रेम की आग को और भी प्रज्वलित कर देता है और इसी तेज से आत्मा जगमगा उठती है।

इस संगीत में परमात्मा का स्वर होता है। उसी में परमात्मा के अलौकिक प्रेम का प्रकाशन होता है। इसलिए शायद लियोनार्ड (१८१९—१८८७) ने कहा था :—

"मेरे स्वामी ने मुझसे कहा था कि मेरे प्रेम की ध्वनि तुम्हारे कान में प्रतिध्वनित होगी। उसी प्रकार, जिस प्रकार मेघ से गर्जन की ध्वनिगूंज जाती है। दूसरी रात में, वास्तव में, अलौकिक प्रेम के तूफान का प्रकोप (यदि इस शब्द में कुछ वैषम्य न हो) मुझ पर बरस पड़ा। उसका तीव्र वेग, जिस सर्वशक्ति से उसने मेरे सारे शरीर पर अधिकार जमा लिया, अत्यंत गाढ़ और मधुर आलिंगन, जिससे ईश्वर ने आत्मा को अपने में लीन कर लिया, संयोग के किसी अन्य हीन रूप से समता नहीं रखता।"

लियोनार्ड ने इसे 'तूफान के प्रकोप' से समता दी है। वास्तव में उस समय प्रेम इतने वेग से शरीर और मन की शक्तियो पर आक्रमण करता है कि उससे वे एक हो बार निस्तब्ध होकर शिथिल हो जाते हैं। उस समय उस शरीर में केवल एक भावना का प्रवाह होता है। शरीर की शक्तियों में केवल एक ज्योति जागृत रहती है और वह ज्योति होती है अलौकिक प्रेम के प्रबल आवेग की। यह आवेग किसी भी सांसारिक भावना के आवेग से सदैव भिन्न है। उसका कारण यह है कि सासारिक भावना का आवेग क्षणिक होता है और उसकी गहराई कम होती है। यह अलौकिक आवेग स्थायी रहता है और उसकी भावना इतनी गहरी होती है कि उससे शरीर की सभी शक्तियाँ ओत-प्रोत हो जाती हैं।

उसका वर्णन 'तूफान के प्रकोप' द्वारा ही किया जा सकता है, किसी अन्य शब्द द्वारा नहीं।

उस प्रेम के प्रबल आक्रमण में एक विशेषता रहती है। जिसका अनुभव टामसन ने पूर्ण रूप से किया था। उसने 'आन दि साइट एंड एस्पेशली आन दि कानटैक्ट विथ दि सावरेन गुड'[१] वाले परिच्छेद में लिखा था कि हम ईश्वर को हृदयंगम करते है अपने आंतरिक और रहस्यमय स्पर्श द्वारा। हम यह अनुभव करते है कि वह हम में विश्राम कर रहा है। यह आंतरिक (अथवा उसे दिव्य भी कह सकते है) संबंध बहुत ही सूक्ष्म और गुप्त कला है; और इसे हम अनुभव द्वारा ही जान सकते है; बुद्धि द्वारा नही।

जब आत्मा को यह अनुभव होने लगता है कि परमात्मा मुझमें विश्राम कर रहा है तो उसमें एक प्रकार के गौरव की सृष्टि हो जाती है। जिस प्रकार एक दरिद्र के पास सौ रुपये आ जाने पर वह उन्हे अभिमान तथा गर्व से देखता है, उनकी रक्षा करता है। स्वयं उपभोग नहीं करता वरन् उन्हे देख-देख कर ही संतोष कर लेता है, ठीक उसी प्रकार, आत्मा परमात्मा रूपी धन को अपनी अन्तरंग भावनाओं में छिपाए, संसार में गर्व और अभिमान से रहती है तथा संसार के मनुष्यों की हँसी उड़ाती है, उन्हें तुच्छ गिनती है। ऐसी अवस्था में एक अंतर रहता है। गरीब का धन मूक होता है, उसमें बोलने अथवा अनुभव करने की शक्ति ही नहीं होती। पर परमात्मा की बात दूसरी है। वह प्रेम के महत्त्व को जानता है तथा उसे अनुभव करता है। उसमें भी प्रेम का प्रबल प्रवाह होता है, वह भी आत्मा के संयोग से सुखी होता है। उस समय जब आत्मा और परमात्मा की सत्ता एक हो जाती है तो परमात्मा आत्मा में प्रकट होकर संसार में घोषित करने लगता है :—

मुझको कहाँ ढूँढ़े बंदे,
मैं तो तेरे पास में।' (कबीर)

[१]पुलेन रचित, दि ग्रेसेज ऑव् इन्टीरियर प्रेयर, पृष्ठ १०७

परिशिष्ट

क

रहस्यवाद से सम्बन्ध रखनेवाले कबीर के कुछ चुने हुए पद

चलौ सखी जाइये तहाँ, जहाँ गये पाइयैं परमानंद।
यहु मन आमन घूमना,
मेरौ तन छीजत नित जाइ।
चिंतामणि चित्त चोरियौ,
ताथैं कछु न सुहाइ।
सुनि सखि सुपने की गति ऐसी,
हरि आये हम पास
सोवत ही जगाइया,
जागत भये उदास।
चलु सखी बिलम न कीजिये,
जब लगि सांस सरीर,
मिलि रहिये जगनाथ सूं,
यूँ कहैं दास कबीर।

वाल्हा आव हमारे गेह रे
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब को कहै तुम्हारी नारी
मोकों इहै अदेह रे,
एकमेक ह्वै सेज न सोवै
तब लग कैसा नेह रे।
आन न भावै, नीद न आवै
ग्रिह बन धरै न धीर रे,
ज्यूं कामी कों काम पियारा,
ज्यूं प्यासे कूं नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपकारी,
हरिसूं कहै सुनाइ रे,
ऐसे हाल कबीर भये हैं,
बिन देखें जिय जाय रे।

वै दिन कब आवैंगे माइ।
जा कारनि हम देह धरी है,
मिलिबौ अंग लगाइ।
हौं जानूं जे हिल मिल खेलूँ
तन मन प्रान समाइ,
या कामना करौ परपूरन,
समरथ हौ राम राइ।
मांहि उदासी माधौ चाहै,
चितवत रैन बिहाइ,
सेज हमारी सिंध भई है,
जब सोऊँ तब खाइ।
यहु अरदास दास की सुनिये,
तन की तपति बुझाइ,
कहै कबीर मिलै जे सांई,
मिलि करि मंगल गाइ।

दुलहिनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा राम भतार।
तन रत करि मैं मन रति करि हूँ,
पंच तत्त बराती,
रामदेव मोरे पाहुने आए,
मैं जोबन मैं माती।
सरीर सरोवर बेदी करि हूँ,
ब्रह्म बेद उचार,
रामदेव संगि भांवर लेहूँ,
धनि धनि भाग हमार।
सुर तैंतीसूँ कौतिग आए,
मुनिवर सहस अठासी,
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं,
पुरिष एक अविनासी।

हरि मेरा पीव माई हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सके मेरा जीव।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया,
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।
किया स्यंगार मिलन के तांई,
काहे न मिलो राजा राम गुसांई।
अब की बेर मिलन जो पाऊँ,
कहै कबीर भौजल नहिं आऊँ।

किया सिंगार मिलन के तांई,
हरि न मिले जग जीवन गुसांई।
हरि मेरो पि रहो हरि की बहुरिया।
राम बड़े मैं तनक लहुरिया।
धनि पिय एकै संग बसेरा,
सेज एक पै मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागिन जो पिय भावै,
कहि कबीर फिर जनमि न आवै।

अवधू ऐसा ज्ञान विचारी
तार्थं भई पुरिष थें नारी।
नां हूँ परनी ना हूँ क्वारी
पूत जन्यू द्यौ हारी,
काली मूड़ कौ एक न जोड़्यो
अजहूँ अकन कुवांरी।
ब्राह्मन कै ब्रह्मनेटी कहियो
जोगी कै घरि चेली,
कलिमा पढ़ि पढ़ि भई तुरकनी
अजहूँ फिरों अकेली।
पीरहि जाऊं न रहूँ सासुरै
पुरषहि अंगि न लाऊं,
कहै कबीर सुनहु रे सन्तो
अंगहि अंग न छुवाऊं।

मै सासने पीव गौंहनि आई
सांई संग साध नहीं पूगी
गयो जोबन सुपिना की नांई।
पंच जना मिल मंडप छायो
तीनि जनां मिलि लगन लिखाई,
सखी सहेली मंगल गावैं
सुख दुख माथै हलद चढ़ाई।
नाना रंगैं भांवरि फेरी
गांठि जोरि बैठे पति ताईं,
पूरि सुहाग भयो बिन दूल्हा
चौक कै रंगि धर्यो सगौ भाई।
अपने पुरिष मुख कबहुं न देख्यो
सती होत समझी समझाई,
कहे कबीर हूं सर रचि मरिहूं
तिरौं कन्त लै तूर बजाई।

कब देखूं मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही।
हूं तेरा पंथ निहारूं स्वामी,
कब रे मिलहुगे अंतरजामी।
जैसे जल बिन मीन तलपै,
ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै।
निस दिन हरि बिन नींद न आवै,
दरस पियासी राम क्यों सचुपावै।
कहै कबीर अब बिलंब न कीजे
अपनों जानि मोहि दरसन दीजै।

हरि कौ बिलोवनौं बिलोइ मेरी माई,
ऐसौ बिलोइ जैसे तत न जाई।
तन करि मटकी मनहि बिलोइ,
ता मटकी में पवन समोइ।
इला प्यंगुला सुषमन नारी,
वेगि बिलोइ ठाढ़ी छछिहारी।
कहै कबीर गुलरी बौरानी
मटकी फूटी जोति समानी।

भलैं नींदौ भलैं नींदौ भलैं नींदो लोग
    तन मन रांम पियारे जोग।
मैं बौरी मेरे राम भतार,
    ता कारनि रचि करौं सिंगार।
जैसे घुबिया रज मल धोवै,
    हर तप रत सब निंदक खोवै।
निंदक मेरे माई बाप,
    जन्म जन्म के काटे पाप।
निंदक मेरे प्रान अधार,
    बिन बेगारि चलावै भार।
कहै कबीर निंदक बलिहारी,
    आप रहै जन पार उतारी।

जो चरखा जरि जाय बढ़ैया न मरै।
मैं कातों सूत हजार चरखुला जिन जरै।
बाबा मोर ब्याह कराव अच्छा बरहि तकाय,
जौ लौं अच्छा वर न मिलै तौ लौं तुमहिं बिहाय।
प्रथमें नगर पहूँचते परि गौ सोग संताप,
एक अचंभा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप।
समधी के घर समधी आए आए बहू के भाय,
गोड़े चूहा दै दै चरखा दियो दिढ़ाय,
देव लोक मर जायंगे एक न मरै बढ़ाय,
यह मन रंजन कारणे चरखा दियो दिढ़ाय,
कहहिं कबीर सुनौ हो संतो चरखा लखै जो कोय,
जो वह चरखा लखि परै ताको आवागमन न होय।

परौसनि मांगे कंत हमारा।
पीव क्यूं बौरी मिलही उधारा।
मासा मांगे रती न देऊं,
घटै मेरा प्रेम तो कासनि लेउं।
राखि परोसनि लरिका, मोरा,
जे कछु पाउं सु आधा तोरा।
बन बन ढूंढ़ौं नैन भरि जोऊं,
पीव न मिलै तो बिलखि करि रोऊं।
कहै कबीर यहु सहज हमारा,
बिरली सुहागिन कंत पियारा।

हरि ठग जग को ठगौरी लाई।
हरि के वियोग कैसे जीऊं मेरी माई।
कौन पुरिष को काकी नारी,
अभिअंतर तुम्ह लेहु बिचारी।
कौन पूत को काको बाप,
कौन मरे कौन करै संताप।
कहै कबीर ठग सों मन माना,
गई ठगौरी ठग पहिचाना।

को बीनै प्रेम लागौ री, माई को बीनै।
राम रसायन माते री, माई को बीनै।
पाई पाई तू पुतिहाई,
पाई की तुरिया बेच खाई री, माई को बीनै।
ऐसे पाई पर बिथुराई,
त्यूं रस आनि बनाओ री, माई को बीनै।
नाचै ताना नाचै बाना,
नाचै कूंच पुराना री, माई को बीनै।
करगहि बैठि कबीरा नाचै
चूहे काट्या ताना री, माई को बीनै।

बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये
भाग बड़े घर बैठे आये।
मंगलचार मांहि मन राखौं;
राम रसायन रसना चाखौं।
मंदिर माहि भया उजियारा,
लै सूती अपना पीव पियारा।
मैं रे निरासी जै निधि पाई,
हमहिं कहा यहु तुमहिं बड़ाई।
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हा,
सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा।

अब मोहि ले चल नणद के बीर,
अपने देसा।
इन पंचन मिलि लूटी हूँ
कुसंग आहि बिदेसा।
गंग तीर मोरि खेती बारी
जमुन तीर खरिहाना,
सातों बिरही मेरे नीपजे
पंचू मोर किसाना।
कहै कबीर यह अकथ कथा है
कहता कहो न जाई,
सहज भाइ जिहि ऊपजै
ते रमि रहे समाई।

मेरे राम ऐसा खीर बिलोइयै।
गुरु मति मनुवा अस्थिर राखहु
इन विधि अमृत पिओइयै।
गुरु के बाणि बजर कल छेदी
प्रगट्या पद परगासा,
शक्ति अधेर जेबड़ी भ्रम चूका
निहचल सिव घर वासा।
तिन बिनु बाणैं धनुष चढ़ाइयै
इहु जग बेध्या भाई,
दह दिसि पड़ी पवन झुलावै
डोरि रही लिव लाई।
उनमन मनुवा सुन्नि समाना
दुविधा दुर्मति भागी,
कहु कबीर अनुभौ इकु देख्या
राम नाम लिव लागी।

उलटि जात कुल दोऊ बिसारी,
सुन्न सहज महि बुनत हमारी।
हमारा झगरा रहा न कोऊ,
पंडित मुल्ला छाड़े दोउ,
बुनि बुनि आप आप पहिरावों,
जहं नहीं आप तहाँ ह्वै गावों।
पंडित मुल्ला जो लिखि दीया,
छांड़ि चले हम कछू न लीया,
रिदै खलासु निरखि ले मीरा,
आपु खोजि खोजि मिलै कबीरा।

जन्म मरन का भ्रम गया गोविन्द लव लागी ।

जीवन सुन्न समानिया
गुरु साखी जागी ।
कासी ते धुनि उपजै
धुनि कासी जाई,
कासी फूटी पंडिता
धुनि कहाँ समाई ।
त्रिकुटी संधि मैं पेखिया
घटहू घट जागी,
ऐसी बुद्धि समाचारी
घट माँहि तियागी ।
आप आपते जानिया
तेज तेज समाना,
कहु कबीर अब जानिया
गोविन्द मन माना ।

गगन रसाल चुए मेरी भाठी।
संचि महारस तन भय काटी।
वाकौ कहिए सहज मतिवारा,
जीवत राम रस ज्ञान विचारा।
सहज कलालनि जौ मिलि आई।
आनंदि माते अनदिन जाई।
चीन्हत चीत निरंजन लाया,
कहु कबीर तौ अनुभव पाया।

अब न बसूँ इहि गांइ गुसाइं.
तेरे नेवगी खरे सयाने हो राम।
नगर एक यहां जीव धरम हता
बसैं जु पंच किसाना,
नैनूं निकट श्रवनूं रसनूं
इंद्री कह्या न माने हो राम।
गांइकु ठाकुर खेत कुनापै
काइथ खरज न पारै
जौरि जेवरी खेति पसारै
सब मिलि मोको मारै हो राम।
खोटो महतो विकट बलाही
सिर कसदम का पारै
बुरौ दिवान दानि नहिं लागै
इक बांधैं इक मारै हो राम।
धरम राइ जब लेखा मांगा
बाकी निकसी भारी,
पांचि, किसाना भजि गये हैं
जीव धर बांध्यो पारी हो राम!
कहै कबीर सुनहु रे संतो
हरि भजि बांध्यो भेरा,
अब की वेर बकसि बंदे कों
सब खत करौं निबेरा।

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ़ा मगन रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा।
गुड़ करि ग्यांन ध्यान कर महूवा
भव भाठी कर भारा,
सुषमन नारी सहज समानी
पीवै पीवन हारा।
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी
चुया महा रस भारी,
काम क्रोध दोइ किया पलीता
छूटि गई संसारी।
सुन्नि मंडल में मंदला बाजै
तहां मेरा मन नाचै,
गुर प्रसादि अमृत फल पाया
सहजि सुषमना काछै।
पूरा मिल्या तबैं सुष उपज्यो
तन की तपति बुझानी
कहै कबीर भव बंधन छूटै
जोतिहि जोति समानी।

अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झरे सदा सुख उपजै
बंक नालि रस पीवै।
मूल बांधि सर गगन समाना
सुषमन यो तन लागी,
काम क्रोध दोउ भया पलीता
तहां जोगिनी जागी।
मनवां जाइ दरीबे बैठा
मगन भया रसि लागा,
कहै कबीर जिय संसा नाहीं
सबद अनाहद जागा।

कोई पीवै रे रस राम नाम का, जो पीवै सौ जोगी रे।
संतो सेवा करो राम की और न दूजा भोगी रे।
यहु रस तौ सब फीका भया
ब्रह्म अगनि पर जारी रे,
ईश्वर गौरी पीवन लागे राम तनी मतवारी रे!
चंद सूर दोउ भाठी कीन्हीं सुषमनि-त्रिगवा लागो रे,
अमृत कूंपी साचा पुरया मेरी त्रिष्णा भागी रे।
यहु रस पीवै गूंगां गहिला ताकी कोई बूझै सार रे।
कहै कबीर महा रस महंगा कोई पीवैगा पीवनि हार रे।

दूभर पनिया भरया न जाई।
अधिक त्रिषा हरि बिन न बुझाई।
ऊपर नीर लेज तलिहारी,
कैसे नीर भरै पनिहारी।
ऊधर्‌यो कूप घाट भयो भारी,
चली निरास पंच पनिहारी।
गुर उपदेस भरीले नीरा,
हरषि हरषि जल पीवै कबीरा।

लावौ बाबा आगि जलावो घरा रे।
ता कारनि मन धंधौ परा रे।
इक डांइनि मेरे मन में बसे रे,
नित उठि मेरे जीय कों डसे रे।
ता डाइनि के लरिका पाँच रे,
निसि दिन मोहि नचावें नाच रे।
कहै कबीर हूँ ताकौ दास,
डाइनि कै संग रहै उदास।

रे मन बैठि कितै जिनि जासी।
हिरदै सरोवर है अविनासी।
काया मधे कोटि तीरथ
काय मधे कासी।
काया मधे कंवलपति
काय मधे बैकुंठवासी
उलटि पवन षटचक्र निवासी
तीरथराज गंग तट वासी।
गगनमंडल रवि ससि दोई तारा
उलटी कूंची लाग किवारा।
कहै कबीर भयो उजियारा
पंच मारि एक रह्यो निनारा

सरवर तटि हंसिनों तिसाई।
जुगति बिना हरि जल पिया न जाई।
पिया चाहै तौ लै खग सारी,
उड़ि न सकै दोऊ पर भारी।
कुंभ लियँ ठाढ़ी पनिहारी,
गुण बिन नीर भरै कैसे नारी।
कहै कबीर गुर एक बुधि बताई,
सहज सुभाई मिले रांम राई।

बोलौ भाई राम की दुहाई ।
इहि रस सिव सनकादिक माते, पीवत अजहु न अघाई ।
इला प्यंगुला भाठी कोंहो ब्रह्म अगिन परजारी,
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ।
मति मतवाला पीवै राम रस, दूजा कछु न सुहाई,
उलटी गंगा नीर कहि आया अमृत धार चुवाई ।
पंच जने सो संग करि लींहे, चलत खुमारी लागी,
प्रेम पियाले पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ।
सहज सुन्नि में जिन रस चाख्या, सतगुरु थैं सुधि पाई,
दास कबीर इहि रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई ।

विष्णु ध्यान सनान करि रे
 बाहरि अंग धोइ रे।
साच बिन सीभसि नहीं
 कोई ज्ञान दृष्ट जोइ रे।
जंजाल मांहें जीव राखै
 सुधि नही सरीर रे,
अभिअंतरि भेदै नही
 कोइ बाहिर न्हावै नीर रे।
निहक्रर्म नदी ज्ञान जल
 सुन्नि मंडल मांहि रे,
औधूत जोगी आतमां
 कोई पेड़े संजमि न्हानि रे।
इला प्यंगुला सुषमनां
 पछिम गंगा बालि रे,
कहै कबीर कुसमल झड़ैं
 कोई मांहि लौ अंग पषालि रे।

जो जोगी जाकै सहज भाइ,
        अकल प्रीति का भीख खाइ।
सबद अनाहद सींगी नाद,
        काम क्रोध विषिया न बाद।
मन मुद्रा जाकै गुर कौ ज्ञान,
        त्रिकुट कोट में धरत ध्यान।
मनहीं करन को करै सनान,
        गुरु को सबद लै धरै ध्यान।
काया कासी खोजै वास।
        तहाँ जोति सरूप भयौ परगास।
ग्यान मेषली सहज भाइ,
        बंक नालि कौ रस खाइ।
जोग मूल को देह बंद,
        कहि कबीर थिर होइ कंद

जंगल में का सोवना, औघट है घाटा।
स्यंघ बाघ गज प्रजल्लै, अरु लंबी बाटा।
निसि बासुरी पेंड़ा पड़ै
जमदानी लूटै,
सूर धीर साचै मतै
सोइ जन छूटै।
चालि चालि मन माहरा
पुर पटन गहिये,
मिलिये त्रिभुवन नाथ सों
निरभै होइ रहिए
अमर नहीं संसार में
बिनसै नर देही,
कहै कबीर बेसास सूं
भजि राम सनेही।

राम बिन तन की ताप न जाई
जल की अगिन उठी अधिकाई।
तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीना,
जल मैं रहो जलहि बिन छीना।
तुम्ह पिंजरा मैं सुवना तोरा,
दरसन देहु भाग बड़ मोरा
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला,
कहै कबीर राम रमूं अकेला।

राम बान अन्ययाले तीर।
जाहि लागे सो जाने पीर।
तन मन खोजो चोट न पाऊं।
औषद मूली कहाँ घसि लाऊं।
एकहि रूप दीसे सब नारी,
न जानो को पियहि पियारी।
कहे कबीर जा मस्तक भाग,
न जानं काहू देइ सुहाग।

भँवर उड़े बग बैठे आई।
रैन गई दिवसो चलि जाई।
हल हल काँपै बाला जीव,
ना जानों का करि है पीउ।
काँचे बासन टिकै न पानी,
उड़िगै हंस काया कुँभिलानी।
काग उड़ावन भुजा पिरानी,
कहहि कबीर यह कथा सिरानी।

देखि देखि जिय अचरज होई।
यह पद बूझै बिरला कोई।
धरती उलटि अकासै जाय,
चिउंटी के मुख हस्ति समाय।
बिना पवन सो पर्वत उड़े,
जीव जंतु सब बृक्षा चढ़े।
सूखे सरवर उठे हिलोरा,
बिनु जल चकवा करत किलोरा,
बैठा पंडित पढ़े पुरान,
बिना देखे का करत बखान।
कहहि कबीर यह पद को जान,
सोई संत सदा परवान।

मैं सबनि में औरनि में हूँ सब
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो।
कोई कहौ कबीर कोई राम राई हो।
ना हम बार बूढ़ नांहीं हम
ना हमरे चिलकाई हो,
पठरा न जाऊँ अरबा नहीं आऊँ
सहजि रहूँ हरिभाई हो।
ओढ़न हमरे एक पछेवरा
लोक बोलैं इकताई हो,
जुलहै तनि बुनि पांन न पावल
बारि बुनी दस ढाई हो।
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल
तब हमरौ नांउं राम राई हो,
जग मैं देखौं जग न देखै मोही
इहि कबीर कछु पाई हो।

अब मैं जागि बौरे केवल राइ की कहानी।
मंझा जोति राम प्रकासै
गुर गमि बाणीं।
तरबर एक अनंति मूरति
सुरता लेहु पिछाणीं,
साखा पेड़ फूल फल नाहीं
ताकी अमृत बाणी।
पुहप वास भँवरा एक राता
बारा ले उर धरिया,
सोलह मंझै पवन झकोरै
आकासे फल फलिया।
सहज समाधि बिरष यहु सींचा
धरती जलहर सोष्या,
कहै कबीर तास मैं चेला
जिनि यहु तरबर पेष्या।

अवधू, सो जोगी गुरु मेरा,
सो या पद का करै निबेरा।
तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा
बिन फूला फल लागा,
साखा पत्र कछू नहीं बांके
अष्ट गगन मुख बागा।
पैर बिन निरति करां बिन बाजै
जिभ्या हीणा गावै,
गावणहारे कै रूप न रेषा
सतगुरु होइ लखावै।
पंखी का खोज, मीन का मारग
कहै कबीर बिचारी,
अपरंपार पार परसोतम।
बा मूरति की बलिहारी।

अजहूँ बीच कैसे दरसन तोरा,
बिन दरसन मन मानें क्यों मेरा ।
हमहि कुसेवग क्या तुम्हहि अजांनां,
दुइ मै दोस कहो किहै रांमां ।
तुम्ह कहियत त्रिभुवन पति राजा,
मन वाछित सब पुरवन क़ाजा ।
कहै कबीर हरि दरस दिखाओ,
हमहिं बुलाओ कै तुम्ह चलि आओ ।

आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जिऊंगा।
गुरु के सबद मैं रमि रमि रहूँगा।
आप कटोरा आप थारी,
आपै पुरखा आपै नारी
आप सदाफल आपै नीबू,
आपै मुसलमान आपै हिन्दू।
आपै मछकछ आपै जाल,
आपै भींवर आपै काल।
कहै कबीर हम नाही रे नाही,
न हम जीवत न मुवले नांही।

अकथ कहानी प्रेम की
कछू कही न जाई,
गूंगे केरि सरकरा
बैठे मुसकाई।
भोमि बिना अरु बीज बिन
तरवर एक भाई
अनंत फल प्रकासिया
गुरु दीया बताई।
मन थिर बैसि बिचारिया
रामहि ल्यौ लाई,
झूठी मन में बिस्तरी
सब थोथी बाई।
कहै कबीर सकति कछू नाहीं
गुरु भया सहाई,
आवण जाणी मिटि गई,
मन मनहि समाई।

लोका जानि न भूलो भाई।
खालिक खलिक खलक में
खालिक सब घट रह्यो समाई।
अला एकै नूर उपनाया
ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थैं सब जग कीया
कौन भला कौन मंदा।
ता अला की गति नहीं जानी
गुरि गुड़ दीया मीठा,
कहै कबीर मै पूरा पाया
सब घट साहिब दीठा

है कोई गुरज्ञानी जग उलटि बेद बूझै,
पानी में पावक बरै, अंधहि आंख न सूझै।
गाई तो नाहर खायो, हरिन खायो चीता,
काग लंगर फांदि कै बटेर बाज जीता।
मूस तो मजार खायो, स्यार खायो स्वाना,
आदि कोऊ उदेश जाने, तासु बेश बाना
एकहि दादुर खायो, पांच खायो भुवंगा,
कहहि कबीर पुकार के है दोऊ एकै संगा।

मै डोरे डोरे जाऊँगा, तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा ।
सूत बहुत कुछ थोरा, ताथैं ले कंथा डोरा,
कंथा डोरा लागा, जब जुरा मरण भौ भागा,
जहाँ सूत कपास न पूनी, तहाँ बसे एक सूनी,
उस सूनी सूं चित लाउंगा ।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आउंगा ।
मेरा डंड इक छाजा, तहाँ बसै इक राजा
तिस राजा सूं चित लाऊंगा ।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा ।
जहां बहु हीरा धन मोती, तहाँ तत लाइ ले जोती,
तिस जोतिहिं जोति मिलाऊंगा ।
तो मै बहुरि न भौ जलि आऊंगा ।
जहाँ ऊगै सूर न चंदा, तहाँ देष्या एक अनंदा,
उस आनंद सूं चित लाऊंगा ।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा ।
मूल बंध एक पाया, तहाँ सिद्ध गणेश्वर राजा,
तिस मूलहिं मूल मिलाऊंगा ।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा ।
कबीर तालिब तोरा, तहाँ गोपाल हरी गुर मोरा,
तहां हेत हरी चित लाऊंगा ।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा ।

अब घट प्रगट भये राम राई।
सोधि सरीर कंचन की नाई।
कनक कसौटी जैसे कसि लेइ सुनारा,
सोधि सरीर भयो तन सारा।
उपजत उपजत बहुत उपाई,
मन थिर भयो तबै थिति पाई।
बाहर खोजत जनम गंवाया,
उनमना ध्यान घट भीतर पाया।
बिन परचै तन कांच कथीरा,
परचै कंचन भया कबीरा।

हम सब माँहि सकल हम माही ।
हम थैं और दूसरा नांही ।
तीन लोक में हमारा पसारा,
आवागमन सब खेल हमारा ।
खट दरसन कहियत हम भेखा,
हमहीं अतीत रूप नहीं रेखा ।
हमहीं आप कबीर कहावा,
हमहीं अपना आप लखावा ।

बहुरि हम काहे को आवहिंगे ।
बिछुरे पंचतत्त की रचना
तब हम रामहिं पावहिंगे ।
पृथ्वी का गुण पानी सोष्या
पानी तेज मिलावहिंगे ।
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि
ये कहि गालि तवावहिंगे ।
ऐसे हम जो बेद के बिछुरे
सुन्नहि माँहि समावहिंगे ।
जैसे जलहि तरंग तरंगनी
ऐसे हम दिखलावहिंगे ।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर
हंसहि हंस मिलावहिंगे ।

दरियाव की लहर दरियाव है जी
दरियाव और लहर में भिन्न कोयम ।
उठे तो नीर है बैठे तो नीर है
कहो दूसरा किस तरह होयम ।
उसी नाम को फेर के लहर धरा
लहर के कहे क्या नीर खोयम ।
जक्त ही फेर सब जक्त है ब्रह्म में
ज्ञान करि देख कब्बीर गोयम ।

है कोई दिल दरवेश तेरा।
नामूत मलकूत जबरूत को छोड़िके
जाइ लाहूत पर करै डेरा।
अकिल की फहम ते इलम रोसन करै
चढ़ै खरसान तब होय उजेरा,
हिर्स हैवान को मारि मरदन करै
नफस सैतान जब होय जेरा।
गौस और कुतुब दिल फिकर जाका करै
फतह कर किला तहं दौर फेरा,
तख़त पर बैठिके अदल इनसाफ़ कर
दोजख और भिस्त का करु निवेरा।
अजाब सवाब का सबब पहुँचे नहीं
जहाँ है यार महबूब मेरा,
कहै कब्बीर वह छोड़ि आगे चला
हुआ असवार तब दिया दरेरा।

मन मस्त हुआ तब क्यों बोलै।
हीरा पायो गांठ गठियायो
बार बार वाको क्यों खोलै।
हलकी थी जब चढ़ी तराजू
पूरी भई तब क्यों तोलै।
सुरत कलारी भई मतवारी
मदवा पी गई बिन तोलै।
हंसा पाये मान सरोवर
ताज तलैया क्यों डोलै।
तेरा साहब है घट मांही
बाहर नैना क्यों खोलै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
साहिब मिल गये तिल ओलै।

तोरी गठरी में लागे चोर
बटोहिया का रे सोवै।
पांच पचीस तीन हैं चुरवा
यह सब कीन्हा सोर,
बटोहिया का रे सोवै।
जागु सबेरा बाट अनेड़ा
फिर नहिं लागे जोर,
बटोहिया का रे सोवै।
भवसागर इक नदी बहतु है
बिन उतरे जाव बोर,
बटोहिया का रे सोवै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
जागत कीजे भोर,
बटोहिया का रे सोवै।

पिया मोरा जागै मैं कैसे सोई री।
पाँच सखी मेरे संग की सहेली
उन रङ्ग रङ्गी पिया रङ्ग न मिली री।
सास सयानी ननद दोरानी
उन डर डरी पिय सार न जानी री।
द्वादस ऊपर सेज बिछानी
चढ़ न सकी मारी लाज लजानी री।
रात दिवस मोहि फूका मारै
मै न सुना रचि रहि सङ्ग जानी री।
कह कबीर सुनु सखी सयानी
बिन सतगुर पिय मिले न मिलानी री।

ये अँखियाँ अलसानी हो;
पिय सेज चलो।
खंभ पकरि पतंग अस डोलै
बोलै मधुरी बानी।
फूलन सेज बिछाय जो राख्यो
पिया बिना कुंभिलानी।
धीरे पाँव धरो पलंगा पर
जागत ननद जिठानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
लोक लाज बिलछानी।

नैहरवा हमका नहिं भावै।
सांई की नगरी परम अति सुन्दर
जहं कोइ जाय न आवै।
चांद सुरज जहं पवन न पानी
को संदेश पहुंचावै।
दरद यह सांई को सुनावै।
आगे चलौं पंथ नहिं सूझै
पीछे दोस लगावै।
केहि विधि सुसरे जाउं मोरी सजनी
बिरहा जोर जनावै।
बिषै रस नाच नचावै।
बिन सतगुरु अपनो नहिं कोई
जो यह राह बतावै।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
सुपने न प्रीतम पावै।
तपन यह जिय की बुझावै।

पिय ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली।
ऊँची अटरिया जरद किनरिया
लगी नाम की डोरिया।
चांद सुरज सम दियना बरत हैं
ता बिच भूली डगरिया।
पांच पचीस तीन घर बनिया
मनुआँ है चौधरिया।
मुंशी है कोतवाल ज्ञान को
चहुँ दिसि लगी बजरिया।
आठ मरातिब दस दरवाजे
नौ में लगी किवरिया।
खिरकि बैठि गोरी चितवन लागी
उपरां झांप झोपरिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो।
गुरु चरनन बलिहरिया।

घूंघट का पट खोल रे
तोको पीव मिलैंगे।
घट घट में वह सांई रमता
कटुक बचन मति बोल रे।
धन जोबन का गर्व न करिये
झूठा पंचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दिया न बार ले
आसा से मत डोल रे।
जोग जुगत री रंगमहल में
पिय पाये अनमोल रे।
कहत कबीर आनंद भयो है
बाजत अनहद ढोल रे।

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी।
ऊ रंगरेजवा कै मरम न जानै
नहिं मिले धोबिया कवन करै उजरी।
तन कै कूंडी ज्ञान सउंदन
साबुन महंग बिकाय या नगरी।
पहिरि ओढ़ि कै चली ससुरिया
गौवां के लोग कहै बड़ी फुहरी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बिन सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी।

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पञ्च तत्त कै बनी चुनरिया
सोरह सै बंद लागे जिया।
यह चुनरी मोरे मैके ते आई,
ससुरे में मनुआं खोय दिया।
मलि मलि धोई दाग न छूटै
ज्ञान को साबुन लाय पिया।
कहत कबीर दाग तब छूटि है
जब साहब अपनाय लिया।

सतगुरु हैं रङ्गरेज चुनर मोरी रङ्ग डारी ॥
स्याही रङ्ग छुड़ाय के रे
दियो मजीठा रङ्ग,
धोये से छूटै नहीं रे
दिन दिन होत सुरङ्ग।
भाव के कुंड नेह के जल में
प्रेम रङ्ग दई बोर,
चसकी चास लगाय के रे
खूब रङ्गी झकझोर।
सतगुर ने चुनरी रङ्गी रे
सतगुर चतुर सुजान,
सब कुछ उन पर वार दूं रे
तन मन धन और प्रान।
कह कबीर रङ्गरेज गुर रे
मुझ पर हुये दयाल,
सीतल चुनरी ओढ़ के रे
भइ हों मगन निहाल।

झीनी झीनी बीनी चदरिया।

काहे क ताना काहे कै भरनी

कौन तार से बीनी चदरिया।

इङ्गला पिंगला ताना भरनी

सुषमन तार से बीनी चदरिया।

आठ कमल दल चरखा डोलै

पांच तत्त गुन तीनी चदरिया।

सांई को सियत मास दस लागे

ठोक ठोक कै बीनी चदरिया।

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी

ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया।

दास कबीर जतन से ओढ़ी

ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया।

मो को कहाँ ढूंढ़ै बन्दे,
मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी
ना मैं छुरी गंड़ास में।
नहीं खाल में नहीं पोंछ में
ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद
ना काबे कैलास में।
ना तौ कौनों क्रिया कर्म में
नहीं जोग बैराग में।
खोजी होय तुरतै मिलिहों
पल भर की तलास में।
मैं तो रहों सहर के बाहर
मेरी पुरी मवास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
सब सांसों की सांस में।

ख

कबीर का जीवन-वृत्त

कबीर के जीवन-वृत्त के विषय में निश्चित रीति से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कबीर के जितने जीवन-वृत्त पाये जाते हैं उनमें एक तो तिथि आदि के विषय में कुछ नहीं लिखा, दूसरे उनमें बहुत सी अलौकिक घटनाओं का समावेश है। स्वयं कबीर ने अपने विषय में कुछ बातें कह कर ही संतोष कर लिया है। उनसे हमें उनकी जाति और व्यक्तिगत जीवन का परिचय मात्र मिलता है इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

कबीर-पंथ के ग्रंथों में कबीर के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। उनमें कबीर की महत्ता सिद्ध करने के लिये उनमें गोरखनाथ[1] और चित्र-गुप्त[2] तक से वार्तालाप कराया गया है। किंतु उनकी जन्म-तिथि और जन्म के विषय पर अधिक ध्यान नहीं दिया। कबीर चरित्र-बोध[3] ही में जन्म-तिथि के विषय में निर्देश किया गया है।

"कबीर साहब का काशी में प्रकट होना

संवत् चौदह सौ पचपन विक्रमी जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन

---

[1] कबीर गोरख की गोष्ठी, हस्तलिखित प्रति सं० १८७०, (ना० प्र० सभा)

[2] अमरसिंह बोध (कबीरसागर नं० ४) स्वामी युगलानन्द द्वारा संशोधित, पृष्ठ १८ (संवत् १९६३, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई)

[3] कबीर चरित्र-बोध (बोधसागर, स्वामी युगलानन्द द्वारा संशोधित पृष्ठ ६, संवत् १९६३, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई)

सत्य पुरुष का तेज काशी के लहर तालाब मे उतरा। उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया।.........उस समय अष्टानन्द वैष्णव तालाब पर बैठे थे, वृष्टि हो रही थी, बादल आकाश में घिरे रहने के कारण अन्धकार छाया हुआ था, और बिजली चमक रही थी, जिस समय वह प्रकाश तालाब में उतरा उस समय समस्त तालाब जगमग-जगमग करने लगा और बडा प्रकाश हुआ। वह प्रकाश उस तालाब मे ठहर गया और प्रत्येक दिशाएँ जगमगाहट से परिपूर्ण हो गई।"

कबीर-पंथियो मे कबीर के जन्म के सबंध मे एक दोहा प्रसिद्ध है :—

चौदह सैं पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भए॥

इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म संवत १४५५ की पूर्णिमा को सोमवार के दिन ठहरता है। बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन है कि "गणना करने से संवत् १४५५ मे ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चंद्रवार को नही पडती। पद्य को ध्यान से पढने पर संवत् १४५६ निकलता है क्योंकि उसमे स्पष्ट शब्दों मे लिखा है "चौदह सौ पचपन साल गए" अर्थात् उस समय तक संवत् १४५५ बीत गया था।[१] गणना से संवत् १४५६ मे चंद्रवार को ही ज्येष्ठ पूर्णिमा पडती है। अतएव इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म संवत् १४५६ की ज्येष्ठ पूर्णिमा को हुआ।"

किंतु गणना करने पर ज्ञात होता है कि चन्द्रवार को ज्येष्ठ पूर्णिमा नही पड़ती। चन्द्रवार के बदले मंगलवार दिन आता है।[२] इस प्रकार बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन प्रामाणिक नही माना जा सकता। कबीर के जन्म के संबंध मे उपयुक्त दोहे मे 'बरसायत' पर भी ध्यान नहीं दिया गया है।

भारत पथिक कबीरपन्थी स्वामी श्री युगलानंद ने 'बरसायत' पर एक

---

[१]कबीर-ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृष्ठ १८

[२]Indian Chronology—Part I, Pillai.

नोट लिखा है :—

"बरसायत अपभ्रंश है वटसावित्री का। यह वटसावित्री व्रत जेष्ठ के अमावस्या को होती है उसकी विस्तार-पूर्वक कथा महाभारत में है। उसी दिन कबीर साहब नीमा और नूरी को मिले थे। इस कारण से कबीरपंथियों मे बरसाइत महातम ग्रंथ की कथा प्रचलित है। और उसी दिन कबीरपंथी लोग बहुत उत्सव मनाते है।[१]

यह नोट श्री युगलानंद जी ने अनुराग सागर में वर्णित "कबीर साहेब का काशी में प्रकट होकर नीरू को मिलने की कथा" के आधार पर लिखा है। उस कथा की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है :—

यह विधि कछुक दिवस चलि गयऊ। तजि तन जन्म बहुरि तिन पयऊ।
मानुष तन जुलहा कुल दीन्हा। सोउ संयोग बहरि विधि कीन्हा॥
काशी नगर रहे पुनि सोई। नीरू नाम जुलाहा होई।
नारि गवन लाव भग सोई। जेठ मास बरसाइत होई॥
आदि

इस पद और टिप्पणी के आधार पर कबीर का जन्म जेठ की 'बरसाइत' (अमावस्या) को हुआ। अब यह देखना है कि जेठ की अमावस्या को चंद्रवार पड़ता है या नही। यदि अमावस्या को चंद्रवार पडता है तब तो कबीर का जन्म संवत १४५५ ही मानना होगा और 'गए' का अर्थ १४५५ के 'व्यतीत होने पर' मानना होगा। ऐसी स्थिति मे दोहे का परवर्ती भाग "पूरनमासी प्रगट भये" भी अशुद्ध माना जावेगा क्योंकि 'बरसाइत' पूर्णमासी को नही पड़ती, वह अमावस्या को पडती है।

---

[१]अनुराग सागर (कबीर-सागर नं० २) पृष्ठ ८६, भारत पथिक कबीरपंथी स्वामी श्री युगलानंद द्वारा संशोधित स० १९६२
(श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई)

[२]वही; पृष्ठ ८६

मोहनसिंह ने अपनी पुस्तक 'कबीर—हिज़ बायाग्रेफ़ी' में इस किंवदंती के दोहे का उल्लेख किया है। वे हिंदी में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (सन् १९०२, पृष्ठ ५) का उल्लेख करते हुए सं० १४५५ (सन् १३९८) की पुष्टि करते हैं।[१]

मोहनसिंह के द्वारा दिए हुए नोट में 'गए' स्थान पर 'गिरा' है। ठीक नहीं कहा जा सकता कि 'गए' अथवा 'गिरा' शब्द में से कौन सा शब्द ठीक है। लिखने में 'ए' और 'रा' में बहुत साम्य है। यदि 'गए' शब्द 'गिरा' से बन गया है तब तो १४५५ के बीत जाने (गए) की बात ही नहीं उठती। 'गिरा' 'पड़ने' के अर्थ में माना जायगा। अर्थात् सं० १४५५ की साल 'पड़ने' पर। किंतु यहां भी 'बरसाइत' और 'पूरनमासी' की प्रतिद्वंद्विता है।

इस दोहे की प्रामाणिकता के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसके लेखक का भी विश्वस्त रूप से पता नहीं। कबीर ग्रंथावली के संपादक ने अपनी प्रस्तावना में लिखा है :—

"यह पद्य कबीरदास के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदास

---

[१]In a Hindi book Bharat Bhramana which has recently been published, the following verses are quoted in proof of the time when Kabir was born and when he died.

चौदह सौ पचपन साल गिरा चंदु एक ठाट हुए।
जेठ सुदी बरसाइत को पूरनमासी तिथि भए ॥
संवत पंद्रह सौ अर पाच मगहर कियो गमन।
अगहन सुदी एकदसी, मिले पवन में पवन ॥

This would then, fix the birth of Kabir in 1398 and his beath in A. D. 1448. (R.S.H.M. 1902, page 5)

का कहा हुआ बताया जाता है ।''[1] किन्तु विद्वान संपादक के इस कथन मे प्रामाणिकता नही पाई जाती । "कहा हुआ बताया जाता है" कथन ही संदेहास्पद है । अतएव हम अपना कथन 'अनुराग—सागर' के आधार पर ही स्थिर करना चाहते है जिसमें केवल यही लिखा है :—

नारि गवन आव मग सोई । जेठ मास बरसाइत दोई ।।[2]

'बील' अपनी ओरिएंटल बायोग्रेफिकल डिक्शनरी[3] मे कबीर का जन्म सन् १४९० (संवत् १५४७) स्थिर करते है और उन्हे सिकदर लोदी का समकालीन मानते हैं । डाक्टर हंटर अपने ग्रन्थ इडियन एंपायर के आठवे अध्याय मे कबीर का समय सन् १३०० से १४२० तक (संवत् १३५७ से १४७७) मानते हैं । बील और हंटर अपने अनुमान मे १९० वर्ष का अतर रखते है । जान ब्रिग्स सिकदर लोदी का समय सन् १४८८ से १५१७ (संवत् १५४५—१५७४) मानते है । उनके कथनानुसार सिकदर लोदी ने २८ वर्ष ५ महीने राज्य किया ।[4] जान ब्रिग्स ने अपना ग्रन्थ मुसलमान इतिहासकारो के हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर लिखा है, अतएव उनके काल-निर्णय के संबध मे शंका नही हो सकती । यदि बील के अनुसार हम कबीर का जन्म सन् १४९० में अर्थात् सिकंदर लोदी के शासक होने के दो वर्ष बाद मानें तो सिकन्दर

Kabir—His Biography by Mohan Singh, page 19, foot note.

[1]कबीर ग्रंथावली-प्रस्तावना, पृष्ठ १८

[2]अनुराग सागर, पृष्ठ ८६

[3]An Oriental Biographical Dictionary—Thomas William Beale. London (1894) Page 204.

[4]History of the Rise of the Mohammedan Power in India—By John Briggs, page 589.

लोदी की मृत्यु तक कबीर केवल २६ वर्ष के होंगे। किन्तु मृत्यु के बहुत पहले ही सिकंदर लोदी कबीर के संपर्क मे आ गया था। यह समय भी निश्चित करना आवश्यक है।

श्री भक्तमाल सटीक[1] में प्रियादास की टीक मे एक घनाक्षरी है। जिसके अनुसार कबीर और सिकदर लोदी का साक्ष्य हुआ था। वह घनाक्षरी इस प्रकार है :—

देखि कै प्रभाव, फेरि उपज्यो अभाव द्विज;
आयो पातसाह सो सिकंदर सुनाँव है।
विमुख समूह संग माता हूँ मिलाय लई,
जाय कै पुकारे "जू दुखायो सब गाँव है ॥"
ल्यावो रे पकर वाको देखौं मै मकर कैसो,
अकर मिटाऊँ गाढ़े जकर तनाव है।
आनि ठाढ़े किये, काज़ी कहत सलाम करौ,
जानै न सलाम, जानैं राम गाढ़े पाँच है ॥

इस घनाक्षरी के नीचे सीतारामशरण भगवानप्रसाद का एक नोट है :—

'यह प्रभाव देख करके ब्राह्मणों के हृदय मे पुनः मत्सर उत्पन्न हुआ। वे सब काशीराज को भी श्री कबीर जी के वश में जान कर, बादशाह सिकंदर लोदी के पास जो आगरे से काशी जी आया था पहुँचे। श्री कबीर जी की मा को भी मिला के साथ मे ले के मुसलमानो सहित बादशाह को कचहरी मे जाकर उन सब ने पुकारा कि कबीर शहर भर मे उपद्रव मचा रहा है...आदि'[2]

इससे ज्ञात होता है कि जब सिकंदर लोदी आगरे से काशी आया,

---

[1]भक्तमाल सटीक—सीतारामशरण भगवान प्रसाद
प्रथम बार, लखनऊ (सन् १९१३)

[2]भक्तमाल, पृष्ठ ४७०

उस समय वह कबीर से मिला। इतिहास से ज्ञात होता है कि सिकंदर लोदी बिहार के हुसेनशाह शरकी से युद्ध करने के लिए आगरे से काशी आया था। जान ब्रिग्स के अनुसार यह घटना हिजरी ९०० [अर्थात् सन् १४९४] की है।[१]

यदि कबीर सन् १९९४ मे सिकन्दर लोदी से मिले होगे तो वे उस समय बील के अनुसार केवल ४ वर्ष के होंगे। उस समय उनका इतनी प्रसिद्धि पाना कि वे सिकंदर लोदी की अप्रसन्नता के पात्र बन सके, संपूर्णतया असंभव है। अतएव बील के द्वारा दी हुई तिथि भ्रमात्मक है।

व्हीο एο स्मिथ ने कबीर की कोई निश्चित तिथि नहीं दी। वे अंडरहिल द्वारा दी हुई तिथि का उल्लेख मात्र करते है।[२] वह तिथि है सन् १४४० से १५१८ (अर्थात् संवत् १४९७ से १५७५)। यह समय सिकंदर लोदी का समय है और कबीर का इस समय रहना प्रामाणिक है।

---

[१]Hoosain Shah Shurky accordingly put his army in motion, and marched against the King. Sikander on hearing of his intentions, crossed the Ganges to meet him; and the two armies came in sight of each other at the spot distant 18 coss (27 miles) from Benares.

History of the Rise of the Mohammedan Power in india by John Briggs. M. R. A. S. London (1929) Page 571-72.

[२]Miss Underhill dates Kabir from about 1440 to 1518. He used to be placed between 1380 and 1420.

The Oxford History of India by V. A. Smith, Page 261 (foot note)

अत: कबीर का जन्म-तिथि किसी ने भी निश्चित प्रकार से नहीं दी। बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुसार प्रचलित दोहे के आधार पर जेष्ठ पूर्णिमा, चंद्रवार संवत् १४५६ और अनुराग सागर के आधार पर जेष्ठ अमावस्या संवत् १४५५ कबीर की जन्म-तिथि है। जेष्ठ पूर्णिमा संवत् १४५६ को चन्द्रवार नही पड़ता अतएव यह तिथि अनिश्चित है। ऐसी परिस्थिति मे हम कबीर की जन्म-तिथि जेष्ठ अमावस्या संवत् १४५५ ही मानते है। कबीर-पंथियो मे भी जेठ बरसाइत सं० १४५५ मान्य है जो अनुराग सागर द्वारा स्पष्ट की गई है।

कबीर की मृत्यु की तिथि भी संदिग्ध ही है।

इस सम्बन्ध में भक्तमाल मे यह दोहा है :—

पंद्रहे सौ उनचास में, मगहर कीन्हों गौन।
अगहन सुदि एकादसी, मिले पौन में पौन॥[१]

इसके अनुसार कबीर की मृत्यु सं० १५४६ मे हुई। कबीरपंथियो मे प्रचलित दोहे के अनुसार यह तिथि सं० १५७५ कही गई है :—

संबत् पंद्रह से पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी रेलो पौन में पौन॥

सिकंदर लोदो सन १४६४ (सवत् १५५१) मे कबीर से मिला था।[३] अतएव भक्तमाल के दोहे के अनुसार कबीर की मृत्यु तिथि अशुद्ध है। कबीर की मृत्यु सवत् १५५१ के बाद ही मानी जानी चाहिए। डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार कबीर का सिकंदर लोदी से मिलना चित्य है। उनका समय चौदहवी शताब्दी के अंतिम वर्षो में ही मानना समीचीन है। वे लिखते है :—

---

[१]भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ४७४

[२]कबीर कसौटी

[३]History of the Rise of the Mohammedan Power in India by John Briggs, page 571—72

"कबीर का समय चौदहवीं शताब्दी का उत्तरकाल और संभवतः पंद्रहवीं शताब्दी का पूर्वकाल मानना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। सिकंदर लोदी के समय में उनका होना सर्वथा संदिग्ध है। केवल जनश्रुतियों के आधार पर ही ऐतिहासिक तथ्य स्थिर नहीं हो सकता।"[१]

नागरी प्रचारिणी सभा से कबीर-ग्रंथावली का संपादन सं० १५६१ की हस्तलिखित प्रति के आधार पर किया गया है।[२] इस प्रति में वे बहुत से पद और साखियाँ नहीं है जो ग्रंथसाहब में संकलित हैं। इस संबंध में बाबू श्यामसुन्दरदास जी का कथन है:—"इससे यह मानना पड़ेगा कि या तो यह संवत् १५६१ वाली प्रति अधूरी है अथवा इस प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष के अंदर बहुत सी साखियाँ आदि कबीरदास जी के नाम से प्रचलित हो गई थी, जो कि वास्तव में उनकी न थी। यदि कबीरदास का निधन संवत् १५७५ में मान लिया जाता है तो यह बात असंगत नहीं जान पड़ती कि इस प्रति के लिखे जाने के अनंतर १४ वर्ष तक कबीरदास जी जीवित रहे और इस बीच में उन्होंने और बहुत से पद बनाए हों जो ग्रंथसाहब में सम्मिलित कर लिए गए हों।"[३]

बाबू साहब का यह मत समीचीन जान पड़ता है। कबीरपंथियों के विचार से साम्य रखने के कारण मृत्यु-तिथि सं० १५७५ ही मान्य है। इस प्रकार कबीर की जन्म-तिथि सं० १४५५ और मृत्यु-तिथि सं० १५७५ ठहरती है। इसके अनुसार वे १२० वर्ष तक जीवित रहे।

कबीर की जाति में भी अभी तक संदेह है। कबीरपंथी तो उन्हें

---

[१]कबीर का समय—हिंदुस्तानी; पृष्ठ २१५, भाग २, अङ्क २।

[२]कबीर ग्रंथावली, भूमिका पृष्ठ २।

[३]वही पृष्ठ २१।

जाति से परे मानते है ।[१] किंतु किंवदंती है कि वे एक ब्राह्मणी विधवा के पुत्र थे। विधवा-कन्या का पिता श्री रामानंद का बड़ा भक्त था। एक बार श्री रामानंद उस विधवा-कन्या के प्रणाम करने पर उसे 'पुत्रवती' होने का आशीर्वाद दे बैठे। ब्राह्मण ने जब अपनी कन्या के विधवा होने की बात कही तब भी रामानंद ने अपना वचन नही लौटाया। आशीर्वाद के फल-स्वरूप उस विधवा-कन्या के एक पुत्र हुआ जिसे उसने लोकलाज के डर से लहरतारा तालाब के किनारे छिपा दिया। कुछ देर बाद उसी रास्ते से नीरू जुलाहा अपनी नव-विवाहिता स्त्री नीमा को लेकर जा रहा था। नवजात शिशु का सौंदर्य देखकर उन्होंने उसे उठा लिया और उसका अपने पुत्र के समान पालन किया, इसीलिए कबीर जुलाहे कहलाए, यद्यपि वे ब्राह्मणी विधवा के पुत्र थे।

महाराज रघुराजसिह की "भक्तमाला रामरसिकावली" में भी इस घटना का उल्लेख है पर कथा में थोड़ा सा अंतर आ गया है।[२] कुछ कबीरपंथियों का मत है कि कबीर ब्राह्मण की विधवा-कन्या

---

[१]है अनाम अविचल अविनाशी, अकह पुरुष सतलोक के वासी ॥
—श्री कबीर साहब का जीवन-चरित्र (श्री जनकलाल) नरसिंह-पुर (१९०५)

[२]रामानंद रहे जग स्वामी । ध्यावत निसिदिन अंतरयामी ॥
तिनके ढिग विधवा एक नारी । सेवा करै बड़ो श्रमधारी ॥
प्रभु एक दिन रह ध्यान लगाई । विधवा तिय तिनके ढिग आई ॥
प्रभुहिं कियो वदन बिन दोषा । प्रभु कह पुत्रवती भरि घोषा ॥
तब तिय अपनो नाम बखाना । यह विपरीत दियो बरदाना ॥
स्वामी कह्यो निकसि मुख आयो । पुत्रवती हरि तोहि बनायो ॥
ह्वै है पुत्र कलंक न लागो । तव सुत ह्वै है हरि अनुरागी ॥
तब तिय-कर फुलका परि आयो । कछु दिन में ताते सुत जायो ॥

के पुत्र नहीं थे, वरन् रामानन्द के आशीर्वाद के फल-स्वरूप वे उसकी हथेली से उत्पन्न हुए थे, इसीलिए वे करवीर (हाथ के पुत्र) अथवा (करवीर का अपभ्रंश) 'कबीर' कहलाए। बात जो भी हो, कबीर का जन्म जनश्रुति ब्राह्मण-कन्या से जोडती है। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि कबीर विधवा की संतान थे तो यह बात लोगों को ज्ञात कैसे हुई ? उसने तो कबीर को लहरतारा के समीप छिपा कर रख दिया था। और यदि ब्राह्मण-विधवा को वरदान देने की बात लोग जानते थे तो उस विधवा ने अपने बालक को छिपाने का प्रयत्न ही क्यों किया ? रामानन्द के आशीर्वाद से तो कलंक-कालिमा को आशंका भी नही हो सकती थी। इस प्रकार कबीर की यह कलंक-कथा निर्मूल सिद्ध होती है। इस कथा के उद्गम के तीन कारण हो सकते है। प्रथम तो यह कि इससे रामानन्द के प्रभुत्व का प्रचार होता है। वे इतने प्रभावशाली थे कि अपने आशीर्वाद से एक विधवा-कन्या के उदर से पुत्रोत्पत्ति कर सकते थे। दूसरा कारण यह हो सकता है कि कबीर के पंथ में बहुत से हिन्दू भी सम्मिलित थे। अपने गुरु को जुलाहा की हीन और नीच जाति से हटा कर वे उनका सम्बन्ध पवित्र ब्राह्मण जाति से जोड़ना चाहते थे। और तीसरा कारण यह है कि कुछ कट्टर हिन्दू और मुसलमान जो कबीर को धार्मिक उच्छृङ्खलता से क्षुब्ध थे वे उन्हे अपमानित और कलंकित करने के लिए उनके जन्म का सम्बन्ध इस कलंक-कथा से घोषित करना चाहते थे।

कबीर के जन्म-सम्बन्ध में प्राप्त हुए कुछ प्रमाणो से यह स्पष्ट होता

जनत पुत्र नभ बजे नगारा। तदपि जननि उर सोच अपारा ॥
सो सुत लै तिय फेंक्यो दूरी। कढ़ी जुलाहिन तहं एक रूरी ॥
सो बालकहिं अनाथ निहारी। गोद राखि निज भवन सिधारी ॥
लालन पालन, किय बहु भाँती। सेयो सुतहिं नारि दिन रातीं ॥

—भक्तमाला रामरसिकावली

है कि वे ब्राह्मण-विधवा की सन्तान न होकर मुसलमानी कुल में ही पैदा हुए थे। सब से अधिक प्रामाणिक उद्धरण हमें आदि श्री गुरुग्रन्थ साहब में मिलता है। उक्त ग्रंथ में श्री रैदास के जो पद संग्रहीत हैं, उसमें एक पद इस प्रकार है:—

मलारबाणीभगतरविदासजी की

१ओसतिगुरप्रसाद ॥..................॥ ३ ॥ १ ॥

मलार ॥ हरिजपततेऊजनांपदमकवलासपतितासमतुलिनहींआनकोऊ ॥ एकहीएकअनेकअनेककहोइबिसथरिओआनरेआनभरपूरिसोऊ ॥ रहाउ ॥ जाकैभागवतुलेखीऐअवरुनहीपेखीऐतासकीजातिआछोपछीपा । बिआसमहिलेखीऐसनकमहिपेखीऐनामकीनामनासपतदीपा ॥१॥

जाकैईदिबकरीदिकुलगऊरेवधुकरहिमानीअहिसेखहीदपीरा ॥ जाकै बापवैसीकरीपूतऐसीसरीतिहूरेलोकपरसिधकबीरा ॥ २ ॥ जाकेकुटुम्बकेढ़ेढ़-

---

मलार बाणी भगत रविदास जी की

१ओ सतगुरु प्रसादि ॥............॥३॥१॥

मलार ॥ हरि जपत तेऊ जनां पदम कवलासपति ता सम तुलि नहीं आन कोऊ। एक ही एक अनेक अनेक होइ बिसथरिओआनरे आन भरपूरि सोऊ ॥ रहाऊ ॥ जाके भगवतु लेखऐ अवरु नहीं पेखीऐ तास की जाति आछौप छीपा ॥ बियास यहि लेखीऐ सनक महि पेखिऐ नाम की नामना सपत दीपा ॥१॥ जाकै ईदि बकरीदि कुल गऊ रे बधु करहि मानीअहि सेख सहीद पीरा ॥ जाकै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी तिहू रे लोक परसिध कबीरा ॥२॥ जाके कुटुम्ब के ढेढ़ सभ ढोंवत फिरहि अजहूँ बनारसी आसपासा ॥ अचार सहित विप्र करहि डंडउति तिनि तनैं रविदासदासानुदासा ॥३॥२॥

—आदि श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी, पृष्ठ ६६८

भाई मोहनसिंह वैद्य, तरनतारन (अमृतसर)

१७ अगस्त १९२७, बुधवार

सबढोरढोवतफिरहि अजहुं बनारसी आसपासा। आचारसहित विप्रकरहिडंड-उतितिनितनैरविदासदासानुदासा ॥३॥ ॥२॥

रैदास के इस पद मे नामदेव, कबीर और स्वयं रैदास का परिचय दिया गया है। नामदेव छीपा (दर्जी) जाति थे। कबीर जाति के मुसलमान थे जिनके कुल में ईद बकरीद के दिन गऊ का बध होता था जो शेख शहीद और पीर को मानते थे। उन्होंने अपने बाप के विपरीत आचरण करके भी तीनो लोकों में यश की प्राप्ति की। रैदास चमार जाति के थे जिनके वंश में मरे हुए पशु ढोए जाते है और जो बनारस के निवासी थे।

आदि श्री गुरुग्रंथ के इस पद के अनुसार कबीर निश्चय ही मुसल-मान वंश में उत्पन्न हुए थे। आदि ग्रंथ का संपादन संवत् १६६१ में हुआ था। सिक्खो का धार्मिक ग्रन्थ होने के कारण इसके पाठ में अणु-मात्र भी अंतर नही हुआ। निर्देशित आदि श्री गुरुग्रन्थ साहिब गुरुमुखी मे लिखे हुए इसी ग्रंथ की अविकल प्रति है।[1] इस प्रकार यह प्रति और

---

[1]इस दशा और त्रुटि को देखते हुए श्री सतगुरु जी के प्रेरना से यदि सेवा करने का उतसाह दास को हुआ और आदि में भेटा भी अती अलाप लागत से भी बहुत कम रखने का द्रिड़ विचार और अैसा ही बरताव किया गया। फिर यहि विचार हुआ कि शब्द के स्थान शब्द तथा और हिंदी शब्द या पद हिंदी की लेखन प्रणाली के अनुसार लिखे जावें या यथातथ्य गुरुमुखी के अनुसार ही लिखे जावें? इस पर बहुत विचार करने से यही निश्चय हुआ कि महान पुरुषों की तर्फ से जो अक्षारों के जोड़ तोड़ मंत्र रूप दिव्य वाणी में हुआ करते हैं उनके मिलाप में कोई अमोघ शक्ती होती है जिसको सर्व साधारण हम लोग नहीं समझ सकते। परन्तु उनके पठन पाठन में यथातथ्य उच्चारन से ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसके सिवाय यह भी है कि श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी के प्रतिशत ८० शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी पाठक ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इस विचार के अनुसार ही यह हिन्दी बोड़ गुरमुखी लिखित

उसका पाठ अत्यंत प्रामाणिक है। इस प्रमाण का आधार श्री मोहनसिंह ने भी कबीर की जाति के निर्णय करने में लिखा है।[१]

दूसरा प्रमाण सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की बाणी[२] से प्राप्त होता है। इसमें 'पारख का अंग' ॥५२॥ के अन्तर्गत कबीर साहब का जीवन-चरित्र दिया हुआ है। प्रारम्भ में ही लिखा हुआ है :—

गरीब सेवक होय करि उतरे
इस पृथिवी के मांहि
जीव उधारन जगत गुरु बार बार बलि जांहि ॥३८०॥
गरीब काशी पुरी कस्त किया, उतरे अधर उधार।
मोमत को मुजरा हुआ, जंगल मै दीदार ॥३८१॥
गरीब कोटि किरण शशि भान मुधि, आमन अधर बिमान।
परसत पूरण ब्रह्म कूं, शीतल पिंडरु प्राण ॥३८२॥
गरीब गोद लिया मुख चूंबि करि, हेम रूप झलकंत।
जगर मगर काया करै, दमकैं पदम अनंत ॥३८३॥
गरीब काशी उमटी गुल भया, मो मन का बर घेर।
कोई कहै ब्रह्म विष्णु हैं, कोई कहे इंद्र कुबेर[३] ॥३८४॥

इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि कबीर ने काशी में सीधे मुसलमान

अनुसार ही रखी गई है अर्थात् केवल गुरमुखी से अक्षरों के स्थान हिन्दी (देवनागरी) अक्षर ही किये गये हैं—

वही ग्रन्थ, प्रकाशक की विनय, पृष्ठ १

[१] Kabir—His Biography, By Mohan Singh, Pub. Atma Ram and Sons, Lahore 1934

[२] श्री सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की बाणी
संपादक अजरानन्द गरीबदासी रमताराम
आर्य सुधारक छापाखाना, बड़ौदा

[३] वही ग्रन्थ, पृष्ठ १९६

(मोमिन) ही को दर्शन देकर उसके घर में जन्म ग्रहण किया। और मोमिन ने शिशु कबीर का मुँह चूम कर उसके अलौकिक रूप के दर्शन किये। इस अवतरण से भी कबीर की ब्राह्मणी विधवा से उत्पन्न होने की किंवदंती गलत हो जाती है। सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की बाणी भी प्रामाणिक ग्रंथ माना जाना चाहिए क्योंकि वह संवत् १८६० की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रकाशित की गई है।[1]

इन दो प्रमाणों से कबीर का मुसलमान होना स्पष्ट है। इन्होंने अपनी जुलाहा जाति का परिचय भी स्पष्ट रूप से अनेक स्थानों पर दिया है :—

१ तननां बुनना तज्या कबीर, रामं नामं लिखि लिया सरीर ॥[2]

२ जुलाहै तनि बुनि पाँन न पावल, फारि बुनो दस ठांईं हो ॥[3]

३ जाति जुलाहा मति कौ धीर,
हरषि हरष गुण रमै कबीर ॥[4]

४ तूं ब्राँह्मण मैं कासी का जुलाहा,
चीन्हि न मोर गियाना ॥[5]

---

[1]यह ग्रंथ साहिब हस्तलिखित विक्रम संवत् १८६० मित्ती वैसाख मास का लिखा हुवा मेरे को मुकाम पिलाणा जिल्ला रोहतक में मिला हुआ जैसा का तैसा छापा है जिसको असल लिखा हुआ ग्रन्थ साहिब देखना हो वह बड़ोदे में श्री जुम्मादादा व्यायाम शाला प्रो० माणेकराव के यहाँ कायम के लिये, रखा गया है सो सब वहाँ से देख सकते हैं :—

अजरानन्द गरीबदासी
—वाणी की प्रस्तावना

[2]कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा) इं० प्रे० प्रयाग १९२८, पृष्ठ ९५

[3]	वही	पृष्ठ	१०४
[4]	”	”	१२८
[5]	”	”	१७३

५ जाति जुलाहा नाँम कबीरा,
बनि बनि फिरौं उदास ।[१]
६ कहत कबीर मोहि भगत उमाहा,
कृत करणीं जाति भया जुलाहा ।।[२]
७ ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै,
यूं ढुरि मिल्या जुलाहा ।।[३]
८ गुरु प्रसाद साध की संगति,
जग जीतें जाइ जुलाहा ।।[४]

कबीर के छठे उद्धरण से तो यही ध्वनि निकलती है कि पूर्व कर्मानुसार ही उन्हे जुलाहे के कुल मे जन्म मिला। "भया" शब्द इस अर्थ का पोषक है।

कबीर बचपन से ही धर्म की ओर आकर्षित थे। वे भजन गाया करते थे और लोगों को उपदेश दिया करते थे पर 'निगुरा' (बिना गुरु के) होने के कारण लोगो मे आदर के पात्र नही थे और उनके भजनों अथवा उपदेशों को भी कोई सुनना पसंद नहीं करता था। इस कारण वे अपना गुरु खोजने की चिंता में व्यस्त हुए। उस समय काशी में रामानन्द की बड़ी प्रसिद्धि थी। कबीर उन्हीं के पास गए पर कबीर के मुसलमान होने के कारण उन्होने उन्हे अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। वे हताश तो बहुत हुए पर उन्होंने एक चाल सोची। प्रातःकाल अंधेरे ही में रामानंद पंचगंगा घाट पर नित्य स्नान करने के लिए जाते थे। कबीर पहले से ही उनके रास्ते मे घाट की सीढ़ियों पर लेट रहे। रामानंद जैसे ही स्नानार्थ आए वैसे ही उनके पैर की ठोकर कबीर के

[१]कबीर ग्रंथावली (ना० प्र० स०), इं० प्रे०, प्रयाग १९२८, पृ० १८१
[२] वही पृष्ठ १८१
[३] " " २२१
[४] " " "

सिर में लगी। ठोकर लगने के साथ ही रामानंद के मुख से पश्चात्ताप के रूप में 'राम' 'राम' शब्द निकल पड़ा। कबीर ने उसी समय उनके चरण पकड़ कर कहा कि महाराज, आज से आपने मुझे राम नाम से दीक्षित कर अपना शिष्य बना लिया। आज से आप मेरे गुरु हुए। रामानंद ने प्रसन्न हो कबीर को हृदय से लगा लिया। इसी समय से कबीर रामानंद के शिष्य कहलाने लगे। बाबू श्यामसुन्दरदास ने अपनी पुस्तक कबीर ग्रंथावली में लिखा है :

"केवल किवदंती के आधार पर रामानन्द को उनका गुरू मान लेना ठीक नही। यह किवदंती भी ऐतिहासिक जाँच के सामने ठीक नही ठहरती। रामानन्द जी की मृत्यु अधिक से अधिक देर में मानने से संवत् १४६७ में हुई, इससे १४ या १५ वर्ष पहले भी उसके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था ११ वर्ष की रही होगी, क्योंकि हम ऊपर उनका जन्म १४५६ सिद्ध कर आए हैं। ११ वर्ष के बालक का घूम फिर कर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्य नहीं होता। और यदि रामानन्द जी की मृत्यु संवत् १४५२-५३ के लगभग हुई तो यह किवदंती झूठी ठहरती है; क्योंकि उस समय तो कबीर को संसार मे आने के लिए अभी तीन चार वर्ष रहे होगे।"[१]

बाबू साहब ने यह नही लिखा कि रामानंद की मृत्यु की तिथि उन्होने किस प्रामाणिक स्थान से ली है। नाभादास के भक्तमाल की टीका करनेवाले प्रियादास के अनुसार रामानंद की मृत्यु सं० १५०५ विक्रमी मे हुई इसके अनुसार रामानंद की मृत्यु के समय कबीर की अवस्था ४६ वर्ष की रही होगी। उस अवस्था मे या उसके पहले कबीर क्या कोई भी भक्त घूम फिर कर उपदेश दे सकता है और रामानन्द का शिष्य बन सकता है। फिर कबीर ने लिखा है : —

कबीर में हम प्रगट भये हैं रामानंद चिताए। ('कबीर परिचय')

[१] कबीर ग्रन्थावली, भूमिका पृष्ठ २५।

कुछ विद्वानों का मत है कि शेख़ तकी कबीर के गुरु थे ।[१] पर जिस गुरु को कबीर ईश्वर से भी बड़ा मानते थे उस गुरु शेख तकी के लिए ऐसा वे नहीं कह सकते थे :—

घट घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख

(कबीर परिचय)

हाँ, यह अवश्य हो सकता है कि वे शेख तकी के सत्संग में रहे हों और उनसे उनका पारस्परिक व्यवहार हो !

कबीर का विवाह हुआ था अथवा नही, यह संदेहात्मक है । कहते हैं कि उनकी स्त्री का नाम लोई था । वह एक बनखंडी बैरागी की कन्या थी । उसके घर पर एक रोज संतों का समागम था । कबीर भी वहाँ थे । सब संतों को दूध पीने को दिया गया । सब ने तो पा लिया, कबीर ने अपना दूध रक्खा रहने दिया । पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि एक संत आ रहा है, उसके लिए यह दूध रख दिया गया है । कुछ देर में संत उसी कुटी पर पहुँचा । सब लोग कबीर की शक्ति पर मुग्ध हो गये । लोई तो भक्ति से इतनी विह्वल हो गई कि वह इनके साथ रहने लगी । कोई लोई को कबीर की स्त्री कहते है, कोई शिष्या । कबीर ने निस्संदेह लोई को संबोधित कर पद लिखे है । उदाहरणार्थ :—

कहत कबीर सुनहु रे लोई
हरि बिन राखन हार न कोई ।

(कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ११८)

संभव है, लोई उनकी स्त्री हो पीछे संत-स्वभाव से उन्होंने उसे शिष्या बना लिया हो । उन्होंने अपने गार्हस्थ-जीवन के विषय में भी लिखा है :—

---

[१] Kabir and the Kabir Panth, by Westcott Page 25

नारी तौ हम भी करी, पाया नहीं विचार
जब जानी तब परिहरी नारी बड़ा विकार।

(सत्य कबीर की साखी, पृष्ठ १३३)

कहते हैं, लोई से इन्हें दो संतान थी। एक पुत्र था कमाल, और दूसरी पुत्री थी कमाली। जिस समय ये अपने उपदेशों से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे थे उस समय सिकंदर लोदी तख्त पर बैठा था। उसने कबीर के अलौकिक कृत्यों की कहानी सुनी। उसने कबीर को बुलाया और जब उसने कबीर को स्वयं अपने को ईश्वर कहते पाया तो क्रोध में आकर उन्हें आग में फेंका, पर वे साफ बच गये, तलवार से काटना चाहा पर तलवार उनका शरीर बिना काटे ही उनके भीतर से निकल गई। तोप से मारना चाहा पर तोप में जल भर गया। हाथी से चिराना चाहा पर हाथी डर कर भाग गया।

ऐसे अलौकिक कृत्यों में कहाँ तक सत्यता है, यह संभवतः कोई विश्वास न करे पर महात्मा या संतों के साथ ऐसी कथाओं का जोड़ना आश्चर्य-जनक नहीं है।

मृत्यु के समय कबीर काशी से मगहर चले आए थे। उन्होंने लिखा है :—

सकल जनम शिवपुरी गँवाया
मरति बार मगहर उठि धाया।

(कबीर परिचय)

यह विश्वास है कि काशी में मरने से मोक्ष मिलता है, मगहर में मरने से गधे का जन्म। पर कबीर ने कहा :—

जौ काशी तन तजै कबीरा
तौ रामहि कौन निहोरा।

(कबीर परिचय)

वे तो यह चाहते थे कि यदि मैं सच्चा भक्त हूँ तो चाहे काशी में मरूँ चाहे मगहर में, मुझे मुक्ति मिलनी चाहिए। यही विचार कर वे

मगहर चले गए। उनके मरने के समय हिंदू मुसलमानों में उनके शव के लिए झगड़ा उठा। हिंदू दाह-कर्म करना चाहते थे और मुसलमान गाड़ना चाहते थे। कफन उठाने पर शव के स्थान पर फूल-राशि दिखलाई पड़ी जिसे हिंदू मुसलमानों ने सरलता से अर्ध भागों में विभाजित कर लिया। हिंदू और मुसलमान दोनों संतुष्ट हो गये।

कविता की भाँति कबीर का जीवन भी रहस्य से परिपूर्ण है।

ग

कबीर की कविता से संबंध रखने वाले हठयोग और सूफीमत में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्दों के अर्थ :—

(अ) हठयोग

१—अवधू

यह अवधून का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ है, जो संसार से वैराग्य लेकर संसार के बंधन से अपने को अलग कर लेता है।

यो विलंघ्याश्रमान् वर्णान आत्मंयेव स्थितः प्रमान।
अति वर्णाश्रमी योगी अवधूतः स उच्यते॥

ऐसा भी कहा जाता है कि यह नाम रामान्द ने अपने अनुयायियों और भक्तों को दे रक्खा था क्योंकि उन्होने रामानुजाचार्य के कर्मकांडों की उपेक्षा कर दी थी।

२—अमृत

ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्त्र-दल-कमल के मध्य में एक योनि है। उसका मुख नीचे की ओर है। उसके मध्य में चंद्राकार स्थान है जिससे सदैव अमृत का प्रवाह होता है। यह इडा नाड़ी द्वारा बहता है और मनुष्य को दीर्घायु बनाने में सहायक होता है। जो प्राणायाम के साधनो से अनभिज्ञ हैं, उनका असृत-प्रवाह मूलाधार-चक्र में स्थित सूर्य द्वारा शोषण कर लिया जाता है। इसी अमृत के नष्ट होने से शरीर वृद्ध बनता है। यदि अभ्यासी इस अमृत का प्रवाह कंठ को बंद कर रोक ले तो उसका उपयोग शरीर की वृद्धि ही में होगा। उसी अमृत-पान से वह अपने शरीर को जीवन की शक्तियो से पूर्ण कर लेगा और यदि तक्षक भी उसे काट ले तो उसके शरीर में विष का संचार न होगा।

३—अनहद

योगी जब समाधिस्थ होता है तो उसके शून्य अथवा आकाश (ब्रह्मरंध्र के समीप के वातावरण) में एक प्रकार का संगीत होता है जिससे वह मस्त होकर ईश्वर की ओर ध्यान लगाए रहता है। इस शब्द का शुद्ध रूप अनाहद है। यह ब्रह्मरंध्र मे निरंतर होता रहता है।

४—इल (इडा)

मेरुदंड के बाएँ ओर की नाड़ी जिसका अंत नाक के दाहिने ओर होता है।

५—कहार (पांच)

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा।

६—काशी

आज्ञा-चक्र के समीप इडा (गंगा या बरना) और पिंगला (यमुना या असी) के मध्य का स्थान काशी (वाराणसी) कहलाता है। यहाँ विश्वनाथ का निवास है।

इडा हि पिंगला ख्याता वाराणसीति होच्यते
वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोत्र भाषितः।

(शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक १००)

७—किसान (पंच)

शरीर में स्थित पंच प्राण
उदान, प्रान, समान, अपान और व्यान।

उदान—मस्तिष्क में
प्रान—हृदय में
समान—नाभि में
अपान—गुह्य स्थान में
व्यान—समस्त शरीर में

८—खसम

सत्पुरुष (देखिए माया का विवेचना)

६—गंगा

इडा नाड़ी ही गंगा के नाम से पुकारी जाती है। कभी कभी इसे बरना भी कहते है। इस नाड़ी से सदैव अमृत का प्रवाह होता है यह आज्ञा चक्र के दाहिने ओर जाती हे।

१०—गगन

(शून्य देखिए)

११—घट

शरीर।

१२—चंद

ब्रह्मरंध्र में सहस्र-दल कमल है। उसमें एक योनि है। जिसका मुख नीचे की ओर है। इस योनि के मध्य में एक चंद्राकार स्थान है, जिससे सदैव अमृत प्रवाहित होता है। यही स्थान कबीर ने चंद्र के नाम से पुकारा है।

१३—चरखा

काल-चक्र, (देखिए पृष्ठ २७)

१४—चोर (पंच)

पंच विकार

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद।

१५—जमुना

पिंगला नाड़ी का दूसरा नाम जमुना है। इसे 'असी' भी कहते है। यह आज्ञा-चक्र के बाएँ ओर जाती है।

१६—जना (तीन)

तीन गुण—

सत, रज, तम।

१७—तरूवर

मेरुदंड।

१८—त्रिकुटी

भोहों के मध्य का स्थान।

१९—ढाई

पच्चीस प्रकृतियां।

२०—धनुष

(देखिए त्रिकुटी)

२१—नागिनी

मूलाधार-चक्र की योनि के मध्य में विद्युल्लता के आकार की सर्प की भाँति साढ़े तीन बार मुड़ी हुई कुंडलिनी है जो सुषुम्णा नाड़ी के मुख की ओर है। यह सृजनात्मक शक्ति है और इसी के जागृत होने से योगी को सिद्धि प्राप्ति होती है।

२२—पंच जना

अद्वैतवाद के अनुसार विश्व केवल एक तत्त्व में निहित है—उस तत्त्व का नाम है परब्रह्म। सृष्टि करने की दृष्टि से उसका दूसरा नाम है मूल प्रकृति। मूल प्रकृति का प्रथम रूप हुआ आकाश, जिसे अंग्रेजी में ईथर (ether) कहते हैं। आकाश (ईथर) की तरंगों से वायु प्रकट हुई। वायु के संघर्षण से तेज (पावक) उत्पन्न हुआ। तेज के संघर्षण से तरल पदार्थ (जल) उत्पन्न हुआ जो अंत में दृढ़ (पृथ्वी) हो जाता है। इस प्रकार मूल प्रकृति के क्रमशः पाँच रूप हुए जो पंच-तत्त्वों के नाम से कहे जाते है :—

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी।

ये पाँचों तत्त्व क्रमशः फिर मूल प्रकृति में लीन हो सकते है। पृथ्वी

जल में, जल तेज में, तेज वायु में और वायु फिर आकाश में लीन हो सकता है और फिर अनंत सत्ता का एक प्रशांत साम्राज्य हो सकता है। यही अद्वैतवाद का सारभूत तत्त्व है। प्रत्येक तत्त्व की पाँच प्रकृतियाँ भी हैं। इस प्रकार पाँच तत्त्व की पच्चीस प्रकृतियाँ हो जाती हैं। वे क्रमशः इस प्रकार है :—

आकाश	की	प्रकृतियाँ—	मन, बुद्धि, चित्त अहंकार, अंतःकरण।
वायु	"	"	प्रान, अपान, समान, उदान, व्यान।
तेज	"	"	आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा।
जल	"	"	शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध।
पृथ्वी	"	"	हाथ, पैर, मुख, गुह्य, लिंग।

२३—पिंगला

मेरुदण्ड के दाहिने ओर की नाड़ी। इसका अंत नाक के बाएँ ओर होता है।

२४—पवन

प्राणायाम द्वारा शरीर की परिष्कृत वायु।

२५—पनिहारी (पंच)

पाँच गुण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध।

२६—बंकनालि

(नागिनी देखिए)

२७—महारस

(अमृत देखिए)

२८—मंदला

(अनहद देखिए)

२९—षट्चक्र

सुषुम्णा नाड़ी की छः स्थितियाँ छः चक्रों के रूप में हैं। उन चक्र

के नाम हैं—

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद, विशुद्ध और आज्ञा।

मूलाधार चक्र	गुह्य-स्थान के समीप,
स्वाधिष्ठान चक्र	लिंग-स्थान के समीप,
मणिपूरक चक्र	नाभि-स्थान के समीप,
अनाहद चक्र	हृदय-स्थान के समीप,
विशुद्ध चक्र	कंठ-स्थान के समीप और
आज्ञा चक्र	दोनों भौहों के बीच (त्रिकुटी में)

प्रत्येक चक्र की सिद्धि योगी की दिव्य अनुभूति में सहायक होती है।

३०—सुरति

स्मृति का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ 'अनुभव की हुई वस्तु का सद्बोध (उस चीज को जगाने वाला कारण) सहकार से संस्कार के आधीन ज्ञान विशेष है।' श्री माधवप्रसाद का कथन है कि सुरति 'स्वरत' का रूप है जिसका तात्पर्य है अपने में लीन हो जाना। कुछ विद्वान इसे फ़ारसी के 'सूरत-इ-इलमिया' का रूप बतलाते है। कबीर के 'आदि-मंगल' में सुरति का अर्थ आदि ध्वनि से ही लिया जा सकता है जिससे शब्द उत्पन्न हुआ है और ब्रह्माओं की सृष्टि हुई :—

१ 'प्रथम मूर्ति समरथ कियो घट में सहज उपचार।[१]
२ तब समरथ के श्रवण ते मूल सुरति भै सार।
शब्द कला ताते भई पाँच ब्रह्म अनुहार॥ (आदि मंगल)

३१—सुन्न

ब्रह्मरंध्र का छिद्र जो (०) बिन्दु रूप होता है। इसी से कुण्डलिनी का संयोग होता है। इसी स्थान पर ब्रह्म (आत्मा) का निवास है। योगी जन इसी रंध्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहते है। इस छिद्र के छः दरवाजे हैं, जिन्हे कुण्डलिनी के अतिरिक्त कोई नहीं खोल सकता।

प्राणायाम के द्वारा इसे बंद करने का प्रयत्न योगी जन किया करते है। इससे हृदय की सभी क्रियाएँ स्थिर हो जाती हैं।

३२—सूर्य

मूलाधार चक्र में चार दलों के बीच में एक गोलाकार स्थान है जिससे सदैव विष का स्राव होता है। इसी स्थान-विशेष का नाम सूर्य है जिससे निकला हुआ विष पिंगला नाड़ी द्वारा प्रवाहित होकर नाक के दाहिनी ओर जाता है और मनुष्य को वृद्ध बनाता है।

३३—सुषुम्ना

इडा और पिंगला नाड़ी के बीच मे मेरुदंड के समानान्तर नाड़ी। उसकी छः स्थितियाँ है, जहाँ छः चक्र है।

३४—हंस

जीव जो नव द्वार के पिंजड़े में बन्द रहता है।

(आ) सूफ़ीमत

जात ذات सिफ़त صفت

सूफीमत के अनुसार अहद (परमात्मा) के दो रूप हैं। प्रथम है ज़ात, दूसरा सिफ़त। ज़ात तो 'जानने वाले' के अर्थ मे और सिफ़त 'जाना-हुआ' के अर्थ में व्यवहृत होता है। अतएव जानने वाला प्रथम तो अल्लाह है और जाना हुआ है दूसरा मुहम्मद। ज़ात और सिफ़त की शक्तियाँ ही अनन्त का निर्माण करती है। इन शक्तियो के नाम है नज़ूल और उरूज। नज़ूल का तात्पर्य है लय होने से और उरूज का तात्पर्य है उत्पन्न अथवा विकसित होने से। नज़ूल तो ज़ात से उत्पन्न होकर शिफ़त में अंत पाती है और उरूज सिफ़त से उत्पन्न होकर ज़ात में अंत पाती है। ज़ात निषेधात्मक है। और सिफ़त गुणात्मक। ज़ात सिफ़त को उत्पन्न कर फिर अपने मे लीन कर लेता है। मनुष्य की परिमित बुद्धि ज़ात को सिफ़त से भिन्न, और सिफ़त को ज़ात से स्वतन्त्र मानती है।

हक़ حق

सभी धर्मो और विश्वासों का आधार एक सत्य है। उसे सूफ़ीमत मे हक़ कहते है। उसके अनुसार यह सत्य दो वस्त्रों से आच्छादित है। सिर पर पगड़ी और शरीर पर अंगरखा। पगड़ी रहस्य से निर्मित है जिसका नाम है रहस्यवाद। अंगरखा सत्याचरण से निर्मित है जिसका नाम है धर्म। वह सत्य इन वस्त्रों से इसलिए ढक दिया है, जिससे अज्ञानियों की आँखें उस पर न पड़े या अज्ञानियों की आँखों मे इतनी शक्ति कही नही है कि वे उस देदीप्यमान प्रकाश को देख सकें। सत्य का रूप एक ही है पर उसका विवेचन भिन्न-भिन्न भाँति से किया गया है। इसीलिए तो संसार में अनेक धर्मो की उत्पत्ति हुई।

अहद احد

केवल एक शक्ति—ईश्वर।

वहदत وحدت

एकात अस्तित्व

इश्क़ عشق

जब अहद अपनी वहदत का अनुभव करता है तो उसके प्यार करने की शक्ति उसे एक दूसरा रूप उत्पन्न करने के लिए बाध्य करती है। इस प्रकार प्रथम स्थिति में अहद आशिक बनता है और उसका उत्पन्न हुआ दूसरा रूप माशूक है। उत्पन्न हुआ अल्लाह का दूसरा रूप प्रेम में इतनी उन्नति करता है कि वह तो आशिक बन जाता है और अल्लाह माशूक़। सूफ़ीमत में अल्लाह माशूक है और सूफी आशिक़।

बक़ा بقا

जीवन की पूर्णता ही को बका कहते हैं। यह अल्लाह की वास्तविक स्थिति है। मृत्यु के पश्चात् प्रत्येक जीव को इस स्थिति में आना पड़ता है। जो लोग ईश्वर के प्रेम में अपने को भुला देते है वे जीवन में ही बका की स्थिति में पहुँच जाते हैं।

शरियत	شریعت	सूफीमत के अनुसार 'बका' के लिये साधनाएं
तरीकत	طریقت	
हकीकत	حقیقت	

मारफत	معرفت	
सितारा	ستارا	तारा
महताब	مہتاب	चन्द्र
आफ़ताब	آفتاب	सूर्य
मदनियत	معدنیت	खनिज अल्लाह के प्रादुर्भाव के सात रूप
नबातात	نباتات	वनस्पति
हैवानात	حیوانات	पशु
इन्सान	انسان	मानव

नासूत ناسوت	मनुष्य अपने ही ज्ञान से ईश्वर की प्राप्ति करने के लिए विकास की इन पाँच स्थितियों से होकर जाता है। प्रत्येक स्थिति उसे आगे की दूसरी स्थिति के योग्य बना देती है। इस प्रकार मनुष्य मानवीय जीवन के निम्नलिखित पांच आसनों पर क्रमशः आसीन होता जाता है—प्रत्येक का स्वभाव भी अलग-अलग होता है।
मलकूत ملكوت	
जबरूत جبروت	
लाहूत لاهوت	
हाहूत هاهوت	
आदम آدم	साधारण मनुष्य
इंसान انسان	ज्ञानी
वली ولي	पवित्र मनुष्य
क़ुतुब قطب	महात्मा
नबी نبي	रसूल

इनके क्रमशः पाँच गुण हैं

अम्मारा اماره	इंद्रियो के वश में,
लौवामा لوامه	प्रायश्चित करने वाला,
मुतमेन्ना مطمينه	कार्य के प्रथम विचार करने वाला,
आलिम عالم	जो मन, क्रम, वचन से सत्य है तथा
सालिम سالم	जो दूसरों के लिए अपने को समर्पित करता है !

तत्त्व

नूर نور	आकाश,
बाद باد	वायु,

आतिश آتش तेज
आब اب जल तथा
खाक خاک पृथ्वी

इन तत्त्वों के अनुसार पाँच इन्द्रियाँ भी हैं

१ बसारत بصارت देखने की शक्ति आँख,
२ समाअत سماعت सुनने की शक्ति कान,
३ नगहत نگہت सूँघने की शक्ति नाक,
४ लज्जत لذت स्वाद लेने की शक्ति जीभ तथा
५ मुस مس स्पर्श करने की शक्ति त्वचा

इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा रूह मुरशिद की सहायता से बक़ा के लिए अग्रसर होती है।

मुरशिद مرسد आध्यात्मिक गुरु या पथप्रदर्शक।
मुरीद مرید वह व्यक्ति जो सासारिक बंधनों से रहित है, बड़ा अध्यवसायी है और श्रद्धा-पूर्वक अपने मुरशिद के अधीन है।

दर्शन और स्वप्न

खयाली خیالي जीवन के विचारो का प्रतिरूप
क़लबी قلبي जीवन के विचारों के विपरीत
नकशी نقشے किसी रूपक द्वारा सत्य का निर्देश
रूही روحے सत्य का स्पष्ट प्रदर्शन
इलाहामी الهامے पत्र अथवा वाणी के रूप में ईश्वरीय संदेश का स्पष्टीकरण

ग़िजाई रूह غذائے روح भोजन (संगीत) के सहारे ही आत्मा परमात्मा के मिलन पथ पर आती है। संगीत में एक प्रकार का कंपन होता है जिससे आध्यात्मिक जीवन के कंपन की सृष्टि होती है।

संगीत के पाँच रूप

तरब طرب शरीर को संचालित करनेवाला (कलात्मक),

राग راگ मस्तिष्क को प्रसन्न करनेवाला (विज्ञानात्मक),

क़ौल قول भावनाओं को उत्पन्न करनेवाला (भावनात्मक),

निदा نداء दर्शन अथवा स्वरूप में सुन पड़नेवाला (अनुभावात्मक) तथा

सऊत صوت अनंत मे सुन पड़नेवाला (आध्यात्मिक)

वजद وجد (Ecstasy) आनंद।

नेबाज़ نیباز इन्द्रियों को वश में करने के लिए साधन।

वजीफ़ा وظیفه विचारों को वश में करने के लिए साधन।

ध्यानावस्थित होने के पाँच प्रकार

ज़िकर ذکر शारीरिक शुद्धि के लिए,

फ़िकर فکر मानसिक शुद्धि के लिए,

कसब کسب आत्मा को समझने के लिए,

शग़ल شغل परमात्मा में लीन होने के लिए तथा

अमल عمل अपनी सत्ता का नाश कर परमात्मा की सत्ता प्राप्त करने के लिए।

हंस कूप तीर्थ

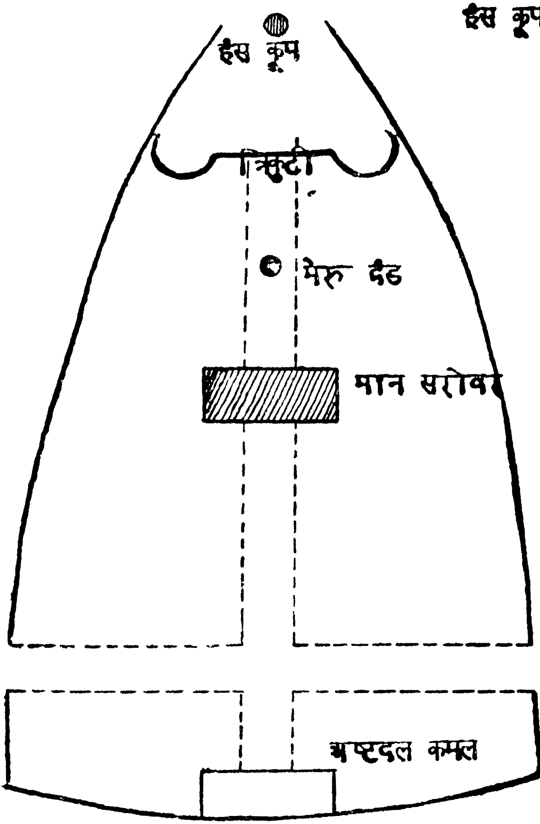

चित्र २

घ

हंसकूप

लगभग ८० वर्ष हुए विहार के स्वामी आत्माहंस ने इस हंसतीर्थ की स्थापना की थी। यह बी० एन० डब्लू० रेलवे पर झूंसी में पूर्व की ओर है। तीर्थ का रूप एक विकसित कमल के आकार का है। इसमें इडा, पिंगला और सुषुम्णा नाड़ियों का दिग्दर्शन भली भाँति कराया गया है। बाईं ओर यमुना के रूप में इडा है और दाहिनी ओर गंगा के रूप में पिंगला। सुषुम्णा का विकास इस स्थान के उत्तरीय कोण में एक कूप में से हुआ है। स्थान के मध्य में एक खंभा है जो मेरुदण्ड का रूप है। उस पर सर्पिणी के समान कुंडलिनी लिपटी हुई है। मेरुदण्ड से आगे एक मंदिर है जिस पर त्रिकुटी लिखा हुआ है। त्रिकुटी के दोनों ओर आँख के आकार के दो ऊँचे स्थल है। त्रिकुटी की विरुद्ध दिशा में एक मंदिर है जिसमें अष्टदल कमल की मूर्ति है। कुंडलिनी मेरुदण्ड का सहारा लेकर अन्य चक्रों को पार करती हुई इस अष्टदल कमल में प्रवेश करती है। यह स्थान बहुत रमणीक है। कबीर के हठयोग को समझने के लिए यह तीर्थ अवश्य देखना चाहिए।

सहायक पुस्तकों की सूची

अंग्रेज़ी

१. मिस्टिसिज़म

लेखक—इवलिन अंडरहिल

२. दि ग्रेसेज ऑव् इंटीरियर

लेखक—आर० पी पूलेन

अनुवादक—लियोनोरा एल० यार्क स्मिथ

३. स्टडीज़ इन मिस्टिसिज्म प्रेयर

लेखक—आर्थर एडवर्ड वेड

४. पर्सनल आइडियलिज्म एण्ड मिस्टिसिज्म

लेखक—विलियम राल्फ़ इन्ज

५. स्टडीज़ इन हीथेनडम् एण्ड क्रिश्चियनडम्

लेखक—डा० ई० स्लेमन

अनुवादक—जी० एम० जी० हंट

६. मिस्टिसिकल एलीमेंट इन मोहमेद

लेखक—जान क्लार्क आर्चर

७. दि योग फ़िलासफ़ी

संग्रहकर्त्ता—भागु० एफ० करभारी

८. दि मिस्टिसिज्म ऑव् परसोनालिटी इन सूफ़ीज्म

लेखक—रेनाल्ड ए० निकलसन

९. दि मिस्टिसिज्म ऑव् साउंड

लेखक—इनायत ख़ाँ

१०. हिन्दू मेटाफिज़िक्स
लेखक—मन्मथनाथ शास्त्री

११. दि मिस्टीरियस कुंडलिनी
लेखक—बसंत जी० रेले

१२. योग
लेखक—जे० एफ़० सी० फुलर

१३. दि पार्शियन मिस्टिक्स (जामी)
लेखक—हेडलेंड डेविस

१४. दि पर्शियन मिस्टिक्स (रूमी)
लेखक—हेडजेंड डेविस

१५. सूफ़ी मैसेज
लेखक—इनायत ख़ाँ

१६. राजयोग
लेखक—मनिलाल नाभूभाई द्विवेदी

१७. कबीर एंड दि कबीर पंथ
लेखक—वेकसट

१८. दि आक्सफ़र्ड बुक आँव् मिस्टिकल वर्स
निकलसन और ली (संपादक)

१९. बीजक
अहमदशाह

हिन्दी

१. बीजक श्री कबीर साहब का
(जिसकी पूर्णदास साहेब, बुरहानपुर नागझरी स्थानवाले ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा त्रिज्या की है)

२. कबीर ग्रंथावली
संपादक—श्यामसुंदर दास बी० ए०

३. कबीर साहब का पूरा बीजक
पादरी अहमद शाह
४. संतबानी संग्रह १—२
प्रकाशक—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
५. कबीर साहब की ग्यान गुदड़ी रेखते और झूलने
प्रकाशक—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
६. कबीर चरित्र बोध
युगलानंद द्वारा संशोधित
७. योग-दर्पण
लेखक—कन्नौमल एम० ए०
८. कबीर वचनावली
अयोध्यासिंह उपाध्याय

फ़ारसी

१. मसनवी
जलालुद्दीन रूमी
२. दीवान-ए शमसी तबरीज़
३. तज़्किरातुल औलिया
मुहम्मद अब्दुल अहद (संपादक)
४. दीवान जामी

संस्कृत

१. योग-दर्शन—पतंजलि
२. शिवसंहिता
अनुवादक—श्रीशचंद्र
३. घेरंडसंहिता
अनुवादक—श्रीशचंद्र वसु

कबीर के पदों की अनुक्रमणी

अ

अकथ कहानी प्रेम की कछु कही न जाई १४८

अजहूँ बीच कैसे दरसन तोरा १४६

अब न बसूं इहि गांइ गुसांई १२७

अब मैं जाणि बौरे केवल राह की कहानी १४४

अब मोंहि ले चल नणद के बीर आपने देसा १२२

अब घट भये राम राई १५२

अवधू ऐसा ज्ञान विचारी ११२

अवधू गगन मंडल घर कीजै १२६

अवधू मन मेरा मतिवारा १२८

अवधू सों जोगी गुरु मेरा १४५

आ

आऊंगा न जाऊंगा मरूँगा न जिऊंगा १४७

उ

उलटि जात कुल दोऊ बिसारी १२४

क

कब देखूं मेरे राम सनेही ११४

कियो सिंगार मिलन के तांई १११

कोई पीवै रे रस राम का, जो पीवै सो जोगी रे १३०

को बीनै प्रेम लागी री, माई को बीनै १२०

ग

गगन रसाल चुए मेरी भाठी १२६

घ

घूंघट के पट खोल रे १६

च

चलौ सखी जाइये तहां जहां गये पाइयें परमानंद १०६

ज

जनम मरन का भ्रम गया गोविंद लव लागी १२५
जो चरखा जरि जाय बढ़ैया ना मरै ११७
जंगल में का सोवना औघट है घाटा १३८

झ

झीनी झीनी चदरिया १६७

त

तोरी गठरी में लागे चोर बटोहिया का रे सोवै १५८

द

दरियाव की लहर दरियाव है जी १५५
दुलहिनी गावहु मंगलचार १०६
दूभर पनियां भर्‌या न जाई १३१
देखि देखि जिय अचरज होई १४२

न

नैहर मै दाग लगाय आइ चुनरी १६४
नैहरवा हमका नहिं भावै १६१

प

परौसिन मांगे कंत हमारा ११८
पिया ऊंची रे अटरिया तोरी देखन चली १६२
पिया मोरा जागै मैं कैसे सोई री १५६

ब

बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये १२१
बहुरि हम काहे कूं आवाहिंगे १५४
बाल्हा आव हमारे गेह रे १०७
बोलौ भाई राम की दुहाई १३५

भ

भलैं नींदौ, भलै नींदौ लोग ११६
भंवर उड़े बग बैठे आई १४१

म

मन मस्त हुआ तब क्यों बोलै १५७
मेरे राम ऐसा खीर बिलोइयै १२३
मैं डोरै डोरै जाऊँगा, मै तो बहुरि न भौजलि आऊँगा १५१
मैं सबनि में औरनि में हूँ सब १४३
मैं सासने पीव गौंहनि आई ११३
मोको कहां ढूंढ़ै बंदे मैं तो तेरे पास में १६८
मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया १६५

य

ये अँखियाँ अलसानी हो पिया सेज चलो १६०

र

राम बान अन्ययाले तीर १४०
राम बिन तन की ताप न जाई १३६
रे मन बैठि कितै जिनि जासी १३३

ल

लावौ बाबा आगि जलाबो घरा रे १३२
लोका जानि न भूलो माई १४६

व

विष्णु ध्यान सनान करि रे १३६
वै दिन कब आवैंगे माई १०८

स

सतगुर है रंगरेज चुनर मोरी रंग डारो १६६
सरवर तट हंसिनी तिसाई १३४
सो जोगी जाके सहज भाइ १३७

ह

हम सब माँहि सकल हम माँहि १५३
हरि को बिलौवनौ बिलोइ मेरी माई ११५
हरि ठग जग को ठगोरी लाई १२६
हरि मेरा पीव माई हरि मेरा पीव ११०
है कोई गुरु ज्ञानी जग उलटि बेद बूझै १५०
है कोई दिल दरवेस तेरा १५६

नामानुक्रमणी

अणिमा ८२
अचित ४२
अच्छर ४२
अद्वैतवाद २०, २४
अनलहक़ २२
अनंत संयोग १००
अंडरहिल (इवलिन) ८, ३६, ५०, ५५, ५७,
अपरिग्रह ७०, ७५
अपान ७६
अबुल अल्लाह ३६
अमृत ८६
अल हल्लाज मंसूरी १८, ३८
अलमवुश ७५
असी ८६
अस्तेय ७०, ७४, ६१
अहद (मुहम्मद अबदुल) १५
अहिंसा ७०, ७४
आगस्टाइन (सेंट) १२
आदि मंगल ४२
आदि पुरुष १३
आनंद ५२, ५३, ५५, ५८, ५६
आवर्तन १००
आसन ७०, ७१, ७२, ७५
ओंकार ४२
अंडज ४५
इच्छा ४२
इनायत खाँ (प्रोफ़ेसर) ३७
इंज (विलियम राल्फ) १०३
इब्लिस ६३
इश्क़ हक़की ६६
इड़ा ७२, ७५, ७६, ८६
ईश्वर ३, १२, १३, १५, २२, २४, ३३, ३५, ३७-४०, ५२-५५, ५८, ६०, ६१, ६४, ६६-६८, ७०, ६१, ६२, ६४, ६६, ६८, १०४
—प्रणिधान ७०
ईसप ३४
उग्रासन ७०
उदान ७६
उद्भिज ४५
उमरा ६६
उल्टवाँसियाँ ३, ७, २६
कबीर पंथी ४२
काबा ३६, ६७

काल-चक्र ३२
कुरान ६३
कुहू ७५
कुंडलिनी ७५,७७,७८,७६,८०,८६
कुंभक ७१
—सूर्यभेद ७६
कूर्म ७६
कैथराइन ५७, ५८
कौलरिज १०
क्रुकर ७६
खुमार २३
गणेश ७७
गधा ६३
गंधारी ७५
ग़िज़ाए रूह १०४
गूंगे का गुड़ २५
गेगलिएटेड कार्ड्स ७६
गोविंद ६०
घेरंडसंहिता ६६, ७६
चंद्र ८६
चरखा ३०, ३१
चक्र
अनाहद ८३
आज्ञा ८५
मणिपूरक ८२
मूलाधार ७६, ८०, ८६, ८७
विशुद्ध ८४
स्वाधिष्ठान ८१, ८२
जरसन १००
जामी २३, ३८
जार्ज हरबर्ट १२
जेन्स (प्रोफेसर) ८
टामसन १०५
डायोनिसस १००
तक़ी (शेख़) ६
तबरीज़ (शमसी) ६, ५०
तक्षक सर्प ८७
तज़किरातुल औलया १५
तपस्या ७०
तरीक़त २२
ताना बाना ३०
त्रिकुटी ८५
त्रिबेनी ८६
दामाखेड़ा ४५
दारदुरी सिद्ध ८०
दिरहम ६७
देवदत्त ७६
द्वैतवाद ६४
धनंजय ७६
धारणा ७०, ७३, ७५, ८८, ८६
ध्यान ७०, ७३, ७५, ८८, ८६
नाग ७६
निकलसन १४, १८, २८
नियम ७०, ७२

निरंजन ४०, ४२
पतंजलि ६६, ७०, ७३
पद्मासन ७०
पवित्रता ७०
पिंगला ७१, ७५, ७६, ८६
पिंडज ४'१
पीर ६२
पुलेन १०३, १०५
पूरक ७१
पुष्प ७५
पैग़म्बर ६३
पंच प्राण ७६
प्रत्याहार ७०, ७२
प्राण ७६, ८७
प्राणायाम ७०, ७१, ७२, ७५
७६, ८७, ८८
प्लेटो २४
प्लेक्सस
कारडियक ८३
केवरनस ८६
फेरंगील ८५
बेसिक ७७
सोलर ८२
हाइपोगास्ट्रिक ८१
फना २२
फ्रायड ३३
बफ़ा २२
बाइबिल ३६
बायज़ीद (शेख़) ६६, ६७, ६८
बिन्दु ८७, ८८
बीजक ३, ४२
ब्रह्म
—चक्र ७६
—चर्य ७०, ७४
—रंध्र ७६,७७,८६,८८,
ब्रह्मा ४२-४५
बसरा १४
बढ़ई ३१
बावा ३१
ब्लेक ३४
ब्लेकी (जान स्टुअर्ट) १७
मक्का ६६
महेश ४३, ४५
मध्वाचार्य ६५
माया ३,२१,२२,२४,४०-४६
५३, ६५
मारिफ्त २२
मार्टिन ८
मूसा ३४
मेक्थिल्ड ३६
मेरी (मारगेरेट) १०२
मेरु दंड ७६, ७७
यम ७०, ७२, ७४
यशस्विनी ७५

योग ६८, ७७
—कर्म ६८, ६६
—मंत्र ६८, ६९
—राज ६८, ६९
—सूत्र ६६, ७३
—हठ ६८, ६९
—ज्ञान ६८, ६६
रमैनी २,४०,४१,४३,४५
रवीन्द्रनाथ टैगोर १००
रहस्यवाद
—अभिव्यक्ति २६
—परिभाषा ७
—परिस्थितियाँ १३
—विशेषताएँ ३५
रँहटा ३०
रसूल १५
रागिनियाँ ४५
राबेआ १४
रामानंद ६,६८
रूपक २९,३०,३२,३४,६५
—भाषा २९
रूमी (जलालुद्दीन) १२,२३,६२
६१,६२,६४,६६,६८
रेख़ता ६०,८८,६६
रेले ७६
रेचक ७१
रोलिन १०२
लघिमा ८२
लब्बयक २५
लियोनार्ड १०४
ली १८
लोव् अव् इंटेलिजेंस ७६
लौ २३
वरुणा ८६
वायु ६४, ७६,८०
वाराणसी ८६
विश्वनाथ ८६
विष्णु ४३,४५
विवाह (आध्यात्मिक) ४७
वेगस नर्व ७८
वेट (ई० ए०) १००
व्यान ७६
शब्द २,२१,४०,४१,४४,४५,६५
६८,७३,७५
शरियत २२
शिवसंहिता ७०,७१,७५—८७
शून्य ४२
शैतान ६२
शंखिनी ७५
शंकर २०, ४६
श्रुतियाँ ४२
सत्पुरुष २,२४,४०-४५,७०,७४
सत्य ७०,७४
समधी ३१,३३

समान ७६
समाधि ७०,७३,७५,८८,८६
सरस्वती ८१
सर्वनाम (मध्यमपुरुष) २८
सहज ४२
सहस्त्र दल कमल ७७,८६,८७
सालोमन ३४
सिद्धासन ७०
सीताराम (लाला) ४
सुन्न ८८
सुषुम्णा ७५,७६-७८,८६,८७
सूफ़ी २२
सूफ १४,२२,३७,१०४
—मत १४,२०-२४,४७,४८
—मत और कबीर ६१
सूर्य ८६,८७
सोऽहं ४२,८७
संतोष ७०
संयम ७३
स्वस्तिकासन ७०
स्वाध्याय ७०
स्वेदज ४५
हक़ीक़त २२
हज्ज ६७
हरबर्ट (जार्ज) १२
हस्तजिह्वा ७५
हाल ३६
हिन्दुस्तान ६७
हुसामुद्दीन ६२
होमर ३४